Vol. XVIII, January-December 2021
Issue No. 1,2 & 3 Combined

ISSN : 0970-1745
Regd. No. 2607/1-V8522

Shodh

A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Art & Humanities

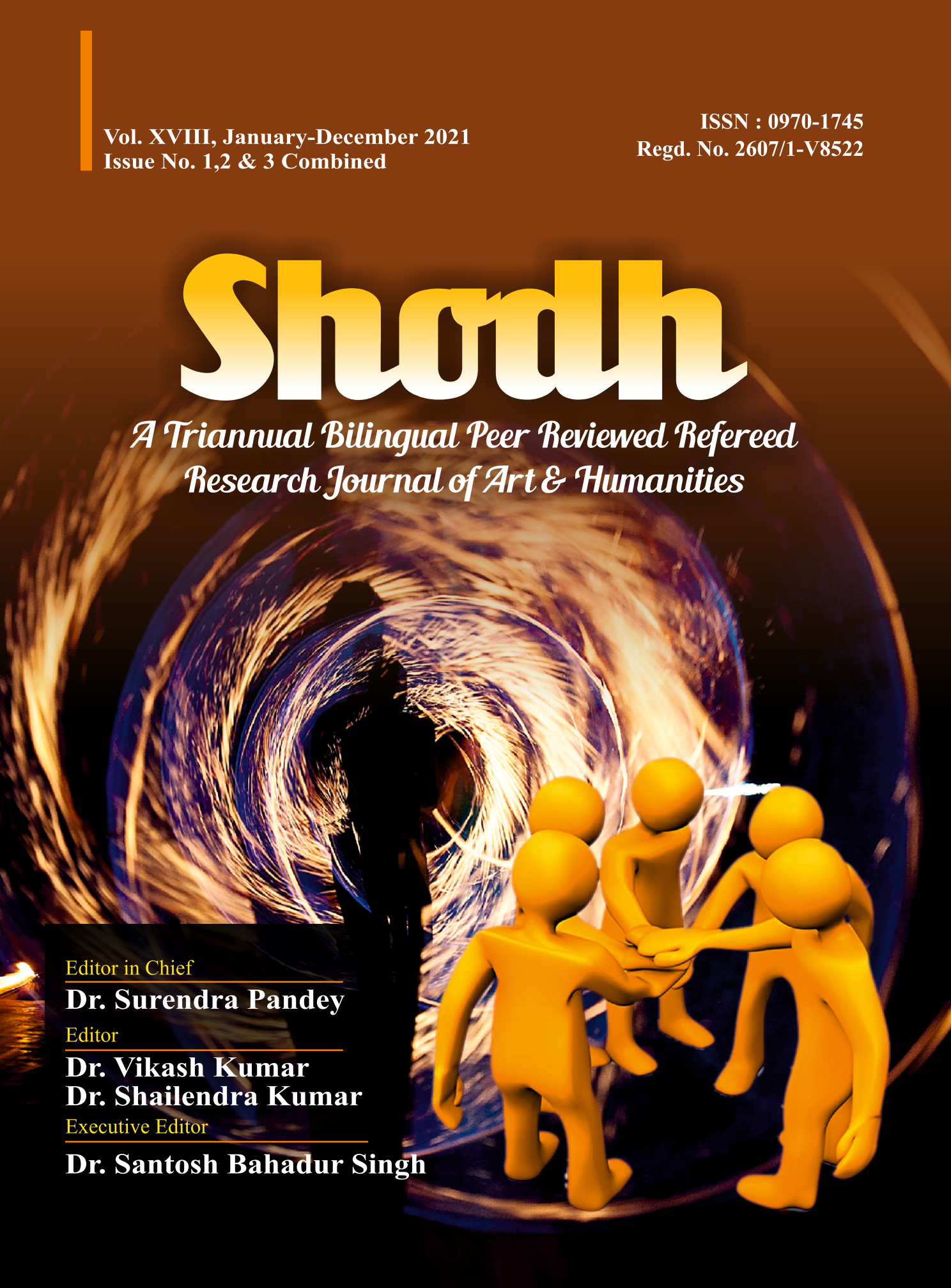

Editor in Chief
Dr. Surendra Pandey

Editor
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar

Executive Editor
Dr. Santosh Bahadur Singh

Vol. XVIII [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2021, ISSN: 0970-1745

Regd. No. 2607/1-V8522 ISSN: 0970-1745

SHODH

[A Triannual Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal of Art & Humanities]

Chief Editor
Dr. Surendra Pandey
Editors
Dr. Vikash Kumar
Dr. Shailendra Kumar

Published by
History & Historical Writing Association, U.P., Varanasi (India)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari, Varanasi
Mob. 9451173404, 9868477818, 9470828492 Email: shodh1984@gmail.com

Printed by
Akhand Publishing House, Delhi (India)
L-9/A, First Floor, Street No.42, Sadatpur Extension, Delhi
Mob. 9968628081, 9555149955, 9013387535 Email: akhandpublishing@yahoo.com

Note: The responsibility of the facts given and opinions expressed in articles of journal is solely that of individual author and not to the publisher.

First Issue Publication 1984

Chief Editor :

Dr. Surendra Pandey
Assistant Professor,
Kuba P.G. College,
Dariyapur, Newada, Azamgarh

Editor

(i) **Dr. Vikash Kumar**
Assistant Professor,
Department of Hindi,
Sri Varshney College, Aligarh, U.P

(ii) **Dr. Shailendra Kumar**
Assistant Professor,
Department of Management
Sikkim University, Sikkim

Executive-Editor

Dr. Santosh Bahadur Singh
Assistant Professor
Department of English
Lady Irwin College, University of Delhi

Co-Editor

Dr. Ripunjay Kumar Singh
Assistant Professor, Hindi,
S.N.R.K.S. College, Saharsa (Bihar)

Sub-Editor

Dr. Abhay Kumar
Assistant Professor,
BRM College, Munger
Munger University, Bihar

Vol. XVIII [Issue No. 1, 2 & 3 Combined], Jan. – Dec. 2021, ISSN: 0970-1745

SHODH

.....A Triannual Bilingual Refereed Research Journals of Arts & Humanities

Patrons
Dr Jai Ram Singh
Principle Degree College, Palahipatti, Varanasi

Editorial Board

1. Prof. Hirocko, Nagasaki, Osaka University, Japan.
2. Prof. Ashok Singh, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
3. Prof. Ravindra Nath Singh, AIHC Department, Banaras Hindu University.
4. Prof. Rangnath Pathak, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
5. Prof. Chandrakala Tripathi, Department of Hindi, Banaras Hindu University.
6. Prof. Anita Singh, Department of English, Banaras Hindu University.
7. Prof. Abha Singh, Pro Vice Chancellor, B.N. Mandal University, Bihar.
8. Prof. Yogesh Kumar Sharma, Department of English, Swami Shraddhanand College, University of Delhi.
9. Prof. Sanghmitra, Department of Political Science, Bodoland University Assam.
10. Dr Nirmla Kumari, Associate Professor, Hindi Department, Shri Varshney College, Aligarh.
11. Dr Varsha Singh Associate Professor English Department, Deshbandhu College, University of Delhi.
12. Dr Anupam Kumar, Associate Professor of English, SGT University, Budhera, Badli Road, Gurugram, Haryana
13. Dr O.P. Singh, Harishchandra P.G. College, Varanasi.
14. Santosh Patel, Assistant Registrar, Delhi Teacher University, Delhi.
15. Dr Ratnesh Tripathi, Assistant Professor, Department of History, Satyawati College, University of Delhi.
16. Dr Vikash Kumar Singh, Assistant Professor, AIHC Department, Banaras Hindu University.

17. Satyendra Kumar, Assistant Professor, Department of English, Kirori Mal College, University of Delhi.

18. Dr. Shubhanku Kochar, Assistant Professor, Department of English, Guru Govind Singh Indraprastha University, Dwarka New Delhi.

19. Vijay kumar, Assistant Professor, Department of English, Satyawati College, University of Delhi.

20. Dr Bhartendu Kumar Pathak, Assistant Professor, Department of Hindi, Kashmir University, Shrinagar (J&K).

21. Dr Priyadarshini, Assistant Professor, Department of Hindi, The English Foreign Languages University, Haiderabad, Telangana.

विषय-सूची
Contents

PART–I

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक शिक्षा का सशक्तिकरण 3
—डॉ० अभिषेख कुमार पाण्डेय

2. जगनिकभट्ट कृत आल्ह खण्ड (परमाल रासो) का वैशिष्ट्य 15
—डॉ० भारतेन्दु कुमार पाठक

3. बिहार के स्वास्थ्य संरचना में आशा कार्यकर्ताओं की भूमिका 18
—डॉ० सरोज कुमार

4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: शिक्षक- प्रशिक्षण में सुधार का अध्ययन 23
—डॉ० लालमणि प्रजापति

5. आजमगढ़ जनपद के बूढ़नपुर तहसील के माध्यमिक स्तर के छात्रों की चिंता का उनके शैक्षिक आंकाक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन 31
—चन्द्रशेखर प्रजापति

6. कोविड-19 महामारी के बाद आर्थिक सुधार में भारत की प्राथमिकताओं का अध्ययन 36
—डॉ० रश्मि, डॉ० राजीव कुमार

7. मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नारी पात्रों की दशा और दिशा : भारतीय परिप्रेक्ष्य में 46
—सोनी कुमारी

8. निराला के गद्य साहित्य की भाषा 50
—डॉ० अरुण कुमार मिश्र

9. राजानक कुन्तक और अभिनवगुप्त पादाचार्य (ध्वनि और वक्रोक्ति: काव्यसौन्दर्य की प्रौढ़ता) 59
—प्रो० मधुप कुमार

10. हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना तथा उत्तरशती का प्रभाव 65
—डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय

11. हिन्दी कहानी की भाषायी संरचना 70
—डॉ० विकास कुमार

12. जीवन मूल्य और कबीर 87
—डॉ. विनय कुमार शुक्ला

PART–II

1. Theme of Alienation in the Modern Literature
(A Close Study of T.S. Eliot and Virginia Woolf) 3
*—*Dr Santosh Bahadur Singh, **Dr Satyendra Kumar , ***Dr Varsha Singh*

2. Importance of Interplay of Education and Technology in Higher
Education in NEP 2020 19
—Dr. Renu Aggarwal

3. Quest of National Identity in 'The Silver Box' Through Readers' Point of View 25
*—*Sanjeev Kumar Bansal, **Pramod Kumar Singh*

4. Steps Towards Some Administrative Reforms 33
—B.N. Mishra

5. Goods and Services Tax: Benefits and its Impact on Indian Economys 40
—Sadanad Gupta

6. Śrāddha: Ideology and Social Dynamics in Ancient India 46
*—*K. Prasant Shekhar , **Dr. Beauty Bhagat*

7. The Poetic Beauty of Charles Baudelaire's *"Les Fleurs du Mal"* 59
—Dr. Vinay Kumar Singh

8. The Poetics of Horror & Paradise in Toni Morrison's Novel 67
—Dr Vipin Pratap Singh

PART – I

राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020 के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक शिक्षा का सशक्तिकरण

डॉ० अभिषेख कुमार पाण्डेय
प्राचार्य
विद्या कॉलेज ऑफ प्रोफेसनल स्टडीज
रसूलपुर चिपुरा सम्पत्चक परसा, पटना।

शोध सार

यह पाया गया की भारत की शिक्षा नीतिओं के विषय में वैदिक प्राचीन काल से ही विचामंथन हो रहा है। ब्राह्मण काल से लेकर मुश्लिम काल तक भारतीय शिक्षा प्रणाली में सुधार हेतु नीतिओं पर समय-समय पर दीर्घकालीन और अल्पकालीन परिवर्तन पाया गया। भारत में शिक्षा सुधार हेतु देश प्रांत के शासकों के द्वारा अपनी सूझ-बुझ से शैक्षिक व्यवस्थाओं पार नियोजन और निरूपण तो किया में लेकिन बहुत सफलता नहीं मिली। भारत देश आजाद होने बाद भारतीय जनता पार्टी के शासन काल में नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में अंतत: वो दिन आ ही गया जब भारत को एक शाशक्त शैक्षिक व्यवस्था का रूप मिलना संकेत मिला उसी दौरान इसरो अध्यक्ष ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020, योजना तैयार की जिसको भारत सरकार द्वारा 29 जुलाई 2020 को लागू कर दिया गया। यह वह नीति है जो भारत की वर्तमान शिक्षक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में हो रही चुनौतियों, समस्याओं और उनके समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। यहाँ यह भी पाया गया की भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षा की प्रक्रिया में बहुत से ऐसे फैक्टर सम्मिलित है जहाँ एक अध्यापक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है। माननीय प्रधान मंत्री नरेन्द्र नोदी जी के कार्यकाल में भारत की जो नयी शिक्षा नीति आई है उसके वृहद् स्वरूप के अंतर्गत 27 प्रमुख बिंदुओं का नीति विषय विशेषज्ञों ने चर्चा जो किया है वह वर्तमान शिक्षा प्रणाली को को इंगित करता है। इन सभी 27 बिंदुओं में से विशेष रूप से बिंदु संख्या 15 पर चर्चा का विषय है जोकि शिक्षक शिक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण सिफारिशें शामिल करता हैं। वर्तमान भारत की अमृत शिक्षा नीति का शुभ परिणाम, इसे अमल में लाने के लिए तैयार की जाने वाली कार्य-योजना की उत्कृष्टता, संबंधित कार्य योजना पर अमल करने की दृढ़ इच्छा शक्ति और शिक्षा प्रक्रिया में शामिल व्यक्तियों की प्रतिबद्धता पर निर्भर करता है। लेखक के इस

लेख में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आलोक में शिक्षक–शिक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण समस्याओं, वर्तमान चुनौतियों तथा उनके संभावित समाधान की चर्चा की गई है।

शोध आलेख

एक भारत श्रेष्ठ भारत के निर्माण में शिक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता है। यहाँ पर पाया गया कि एक मानव की उपलब्धियों में शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान उतना ही जितना कि अन्य आवश्यकता की पूर्ति है। इसलिए तो प्रत्येक देश की अपनी सांस्कृतिक आवश्यकताओं, सामाजिक आवश्यकताओं, भौगोलिक आवश्यकताओं, भौतिक आवश्यकताओं और ऐतिहासिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा व्यवस्था में समयानुसार सुधारात्मक परिवर्तन करना जरुरी है। यह बात भारत के एक एक नागरिक पर भी लागू होती है, क्योंकि नागरिक से ही शिक्षा व्यवस्था चलती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ माननीय डॉ० राधा कृष्णन की बागडोर में वर्ष 1948 में विश्वविद्यालय आयोग, डॉ० लक्ष्मी शंकर मुदालियर की बागडोर में भारतीय माध्यमिक शिक्षा के लिए माध्यमिक शिक्षा आयोग (मा०शि०बो० 1952) और वर्ष 1964 में डॉ० दौलत सिंह कोठारी जी की अध्यक्षता में प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की स्थापना इस संबंध में शिक्षा के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को व्यक्त करती है। भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति सर्वप्रथम 1986 में बनाई गई थी और यह पुनः वर्ष 1992 में संशोधित की गई थी। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उद्देश्य 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान करना और सभी स्तरों पर उनके शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना भी था।

यदि देखा जाए तो इक्कीसवीं सदी के भारत की शिक्षा नीति के स्वरूप को दर्शाने वाली, इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कुल 27 प्रमुख बिंदुओं पर विस्तार रूप से चर्चा की गई है जिसमे खासकर बिंदु क्रमांक संख्या 15 में अध्यापक शिक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण सिफारिशें भी शामिल की गयी है। इसके साथ ही इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति के स्कूली शिक्षा से संबंधित बिंदुओं पर गवेषणा में भी अध्यापक और अध्यापक शिक्षा से संबंधित मुद्दों पर चर्चा की गई है।

शोधकर्ता द्वारा इस चैप्टर में अध्यापक शिक्षा के सम्प्रत्यय, विचारों और आवश्यकताओं पर चर्चा की गई है। इसके साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में दिए गए महत्वपूर्ण सुझाव एवं अमल के दौरान आने वाली चुनौतियों तथा उसके संभावित समाधानों पर भी चर्चा की गई है। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सफल कार्यान्वयन को प्राप्त करने के लिए एक दीर्घकालिक दृष्टिगोचर, एक सतत आधार पर विशेषज्ञता की उपलब्धता, और सभी संबंधित राष्ट्रीय एजेंसिओं, राज्य, संस्थागत और व्यक्तिगत स्तरों से ठोस कार्रवाई की मांग की गयी है। इस विषय में, नीति केंद्रीय सलाहकार बोर्ड ऑफ एजुकेशन (सीएबीई) को मजबूत और सशक्त बनाने की सिफारिश भी करती है, जिसमें शैक्षिक

और सांस्कृतिक विकास से संबंधित मुद्दों के व्यापक परामर्श और परीक्षा के लिए एक बहुत बड़ा जनादेश होगा और न केवल एक मंच होगा। एम०एच०आर०डी० और राज्यों के संबंधित शीर्ष निकायों के साथ घनिष्ठ सहयोग में, निरंतर आधार पर देश में शिक्षा की दृष्टि को विकसित, कलात्मक, मूल्यांकन, और संशोधित करने के लिए एक सदस्यों की कमिटी तैयार की गयी जिसको कैब जैसी संस्था निगरानी करेगी। यह संस्थागत ढांचे की समीक्षा और निर्माण भी करेगा जो इस दृष्टि को प्राप्त करने में मदद करेगा। शिक्षा और शिक्षा पर ध्यान वापस लाने के लिए, यह वांछनीय है कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय (MHRD) को शिक्षा मंत्रालय (MoE) के रूप में फिर से नामित किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में एक शिक्षक की परिकल्पना का आधार

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अध्यापक की एक आदर्शरूपी अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है, जो प्राचीन वैदिक कालीन भारतीय अध्यापको की तरह विद्वता, नैतिक आचरण, कर्तव्य परायणता और विश्व के कल्याण के लिए सतत/निरंतर प्रयत्नशील अध्यापकीय कार्य प्रणाली याद दिलाती है। इसके साथ ही यह नीति मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों, सूचना संचार की तकनीकों और अत्याधुनिक उपकरणों का कुशलता पूर्वक उपयोग करने में समर्थ तथा आधुनिक नवाचारों एवं ज्ञान-विज्ञान में दक्ष अध्यापको की अवधारणा प्रस्तुत करती है।

अध्यापक वास्तव में हमारे बच्चों के भविष्य को आकार देते हैं और, इसलिए, इनको हमारे राष्ट्र का भविष्य माना जाता है। इसकी वजह यह है कि भारत में अध्यापक समाज के सबसे सम्मानित सदस्य थे है और रहेगे। समाज ने शिक्षकों, या गुरुओं, छात्रों को उनके ज्ञान, शिक्षण कौशल प्रशिक्षण, और नैतिकता को बेहतर ढंग से पारित करने के लिए जो आवश्यक था, दिया। यहाँ पर यह भी पाया गया कि शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता, अध्यापक भर्ती, स्कूल तैनाती, स्कूल सेवा की स्थिति और शिक्षकों का सशक्तीकरण वह नहीं है जहाँ होना चाहिए, और परिणामस्वरूप शिक्षकों की गुणवत्ता और प्रेरणा वांछित मानकों तक नहीं पहुँचती है। शिक्षकों के लिए उच्च सम्मान और शिक्षण पेशे की उच्च स्थिति को बहाल किया जाना चाहिए ताकि शिक्षण पेशे में प्रवेश करने के लिए सर्वश्रेष्ठ को प्रेरित किया जा सके। हमारे बच्चों और हमारे राष्ट्र के लिए सर्वोत्तम संभव भविष्य सुनिश्चित करने के लिए शिक्षकों की प्रेरणा और सशक्तिकरण की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बिंदु हिंदी भाषा, साहित्य का विशाल संकलन क्रमांक 15.1 में कहा गया है कि,

> "अगली पीढ़ी को आकार देने वाले शिक्षकों की एक टीम के निर्माण में अध्यापक शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षकों को तैयार करना एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके लिए

बहु-विषयक दृष्टिकोण और ज्ञान की आवश्यकता के साथ बेहतरीन मॅटरों के निर्देशन में मान्यताओं और मूल्यों के निर्माण तथा उनके अभ्यास की भी आवश्यकता होती है। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अध्यापक शिक्षा और शिक्षण प्रक्रियाओं से संबंधित अद्यतित प्रगति के साथ भारतीय मूल्यों, भाषाओं ज्ञान, लोकाचार और परंपराओं (जनजातीय परंपराओं सहित) के प्रति भी जागरूक रहें।"

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इक्कीसवीं सदी की शिक्षक शिक्षा से अपेक्षा की गई है किये शिक्षक शिक्षा संस्थान ऐसे शिक्षकों को विकसित करें, जिनमें निम्नलिखित अपेक्षाओं को पूर्ण करने की दक्षता हो।

1. **प्रशिक्षक को अपने विषय की प्रवीणता**- अध्यापकों में विशेषज्ञता के साथ-साथ अन्य विषयों का सामान्य ज्ञान भी होना चाहिए।
2. एक अध्यापक को शिक्षण के क्षेत्र में शिक्षण प्रक्रिया की समझ विकसित होनी चाहिए। चूँकि अधि गम आजीवन निरंतर होता रहता है अत: शिक्षक में आजीवन सीखने वाले की भूमिका विकसित होनी चाहिए।
3. अध्यापक में शिक्षण प्रक्रिया के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और रुचि विकसित होनी चाहिए।
4. भारतीय संस्कृति और विरासत की समझ और इसके प्रति गौरव भावना विकसित होनी चाहिए।
5. आधुनिक सूचना संचार प्रौद्योगिकी और शैक्षिक नवाचारों और इनके उपयोग करने की क्षमता की भी समझ विकसित होनी चाहिए।
6. अध्ययन, शिक्षण, अनुभव और शोध के माध्यम से स्वयं को प्रासंगिक और कोशलात्मक विकास भी विकसित होनी चाहिए।
7. शिक्षक में त्रिभाषा नीति के प्रतिपारंगता होना चाहिए।
8. संवैधानिक एवं नैतिक मूल्यों के पालन को जीवन का बहुमूल्य अंग बनाने वाला होना चाहिए।
9. अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में शैक्षिक नवाचारों की खोज विकसित होना चाहिए।
10. अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में स्व-अध्ययन शैली में परिवर्तन के प्रति तत्पर विकसित होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की शिक्षक शिक्षा के संबंध में दिए गए महत्वपूर्ण सुझाव

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा से संबंधित प्रत्येक पहलू पर विचार किया गया है इसमें शिक्षक-प्रशिक्षण की चर्चा भी शामिल है शिक्षक शिक्षा पर न्यायमूर्ति जे०एस०वर्मा आयोग (शिक्षक रेगुलेशन 2012) की चिंताओं एवं शिक्षक प्रशिक्षण के क्षेत्र की समस्याओं तथा उपरोक्त शिक्षक शिक्षा अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए हैं-

1. अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को सिर्फ बहु-विषयक शैक्षिक संस्थानों में ही आयोजित किया जाना चाहिए।

2. शैक्षिक रूप से सुदृढ़, मजबूत, बहु-विषयक और एकीकृत अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को वर्ष 2030 तक कार्यान्वित कर देना चाहिए।

3. वर्ष 2030 से एकीकृत बी०एड० पाठ्यक्रम का अध्ययन केवल एन०सी०टी०ई० द्वारा निर्धारित बहु-विषयक, गुणवत्तापरक युक्त एवं निर्धारित मानकों के आधार पर संचालित शिक्षण संस्थानों में ही किया जा सकता है।

4. एकल विषय आधारित शैक्षणिक संस्थानों का वर्ष 2030 तक बहुविषयक संस्थानों के रूप में उन्नयन करना, जो शिक्षण संस्थान इसको लागू करने असफल होंगे उन्हें बंद कर दिया जाना चाहिए।

5. राष्ट्रीय शिक्षा निति 2020 द्वारा निर्धारित चार वर्षीय अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम B.Sc/B.A/B.Com-B.Ed., दो वर्षीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम (बी०एड०) और एक वर्षीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम (बी०एड०) को स्वीकृति, लेकिन केवल उन्हीं बहु विषयी संस्थान को दो वर्षीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम (बी०एड०) और एक वर्षीय शिक्षक शिक्षा (बी०एड०) कार्यक्रम चलाने की स्वीकृति मिले।

6. जिन विद्यार्थिओं के पास स्नातक B.Sc/B.A/B.Com..... की डिग्री है, उनके लिए दो वर्षीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम (बी०एड०) एवं जिनके पास विशिष्ट विषय के साथ चार वर्षीय स्नातक की डिग्री है, उनके लिए एक वर्षीय शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम (बी०एड०) चलाया जा सकता है।

7. गुणवत्ता की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय परीक्षण संस्थान द्वारा आयोजित विषय और शिक्षक योग्यता परीक्षा के आधार पर शिक्षक शिक्षा संस्थानों में प्रवेश।

8. पीएच०डी० कार्यक्रम में नए नामांकित विद्यार्थियों को अपने शोध (शिक्षा शास्त्र या अध्ययन अथवा पाठ्यक्रम विकास) के लिए प्रासंगिक विषय में क्रेडिट आधारित अध्ययन करना होगा।

9. अध्यापको के रूप में कार्य करने वाले सभी अध्यापकों को अपने व्यावसायिक विकास को जारी रखने के लिए प्रेरणा और सुविधाएँ दी जाएँ।

10. भारत सरकार के द्वारा चालू किये गए स्वयं और दीक्षा जैसे प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षक शिक्षा पाठ्यक्रमों से जुड़कर आत्म-विकास के अवसर पैदा करना।

सुझावों के कार्यान्वयन से संबंधित चुनौतियां

भारत सरकार द्वारा लागू राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लिखित अध्यापक शिक्षा से संबंधित दिए गए सिफारिशों के कार्यान्वयन में आने वाली प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित बिंदुओं का विश्लेषण किया जा सकता है।

1. **संरचनात्मक अस्थिरता से सम्बंधित शैक्षिक चुनौतियां**- आज से लगभग विगत 14 वर्षों के अंतराल में शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में लागू की गई विभिन्न सिफारिशों में सरचनात्मक परिवर्तन से सम्बंधित इतने प्रयोग किये गए हैं, जितने पूरी शिक्षा प्रणाली में नहीं हुआ होगा। जिसका प्रभाव आज यह हुआ है कि भारत में आम शैक्षिक संरचनात्मक अस्थिरता जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। जैसे.....

I. भारत सरकार ने वर्तमान में चल रहे एक वर्षीय (बी०एड०) कार्यक्रम को परिवर्तित कर दो वर्षीय कार्यक्रम (बी०एड०) के रूप में परिवर्तित कर दिया।

II. भारत सरकार की नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत अब यह द्विवर्षीय पाठ्यक्रम (बी०एड०) को परिवर्तित होकर 4 वर्षीय आई० ई० टी० ई० पी० हो गया है। जिसके अंतर्गत भारत सरकार के शिक्षाविदों द्वारा इतने हड़बड़ी में संरचनात्मक परिवर्तन तो कर दिया गया लेकिन यह महसूस नहीं किया गया कि इस परिवर्तन से बड़े-बड़े शोधार्थी को भी यह सफलता और असफलता का अनुभव भी स्पष्ट नही हो पायेगा।

III. इन सभी पाठ्यक्रम में सेमेस्टर सिस्टम लागू तो कर दिया जा रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप इस पूरी शिक्षक शिक्षा प्रणाली पर इसका गहरा नकारात्मक असर भी दिखाई पड़ा है।

2. **नवीन पाठ्यक्रम स्वरूपगत परिवर्तन से संबंधित चुनौती:** नवीन पाठ्यक्रम स्वरूपगत परिवर्तन से संबंधित चुनौती के अंतर्गत भारत सरकार ने प्रशिक्षित अध्यापक बनने के लिए जो चार वर्षीय बी०एड० कार्यक्रम पर तो बल दिया लेकिन इसके साथ दो वर्षीय बी०एड० और एक वर्षीय बी०एड० कार्यक्रम को फिर से बहाल करने की पहल भी की गई है। यहाँ देखा जाय तो यह अंतर मिलता है कि ये सभी जितने नवीन स्वरूप गत कार्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1967 से 1986 से लेकर 1992

होते हुए 2020 में बहु-विषयक स्वायत्त महाविद्यालयों, शिक्षक शिक्षण संस्थाओं या विश्वविद्यालयों में लागू तो किया जा सकता है लेकिन भविष्य में इसकी कोई खास शैक्षिक उपलब्धि नहीं दिखाई दे रही है।

3. **शिक्षक संस्थानों की गुणवत्ता:** वर्तमान प्रस्थिति में अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान पाठ्यक्रम आधारित महाविद्यालयों/कॉलेजों/शिक्षक प्रशिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ते तो जा रही है। लेकिन गुणवत्ता के नाम पर सिर्फ कागजों में ही.....इसमें भी निजी महाविद्यालय, शिक्षण संस्थानों की संख्या बहुत अधिक है। ऐसी प्रस्थिति में बहुत बड़ी संख्या में बहु-विषयक शिक्षण संस्थानों की तत्काल आवश्यकता होगी। अब समस्या यह है की वर्तमान में इन सभी महाविद्यालय/संस्थानों का और नवीन शिक्षण संस्थानों की स्थापना का और इनके अपग्रेडेशन का कार्य किस तरह से होगा? इनके अपग्रेडेशन के लिए आवश्यक पूँजी कहाँ से आएगी? यह अपने आप में एक बहुत बड़ी समस्या है। वित्तीय, भौतिक और मानवीय सुविधाओं के अभाव में एकल सरकारी या निजी शिक्षण संस्थान के लिए खुद को बहु-विषयक संस्थान में बदलना अपने आप में एक बड़ी एक समस्या होगी। यदि आज के दौर में इन निजी संस्थान को स्वयं को बहु-विषयक संस्थानों में विकसित नहीं कर पाएँगे तो, शायद भविष्य में यह संस्थान स्वत: बंद हो जाएँगे, या इनका विलय हो जायेगा।

4. **शिक्षक प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के संबंध में अस्पष्टता:** भारत सरकार द्वारा लागू की गयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में अध्यापकों को तैयार करने के बारे में तो चर्चा की गई है, लेकिन यह नहीं बताया गया है कि ऐसे अध्यापकों को तैयार करने वाले अध्यापकों प्रशिक्षक कैसे प्रशिक्षित किये जायेगें।

5. **प्रतिभाशाली छात्र छात्राओं को आकर्षित करने में आ रही चुनौती**- भारत सरकार द्वारा लागु की गयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में अपेक्षा की गई है कि प्रतिभाशाली या उच्च श्रेणी प्राप्त करने वाले छात्र छात्राओं के अध्यापक बनने के प्रति आकर्षित हो। प्रतिभाशाली छात्र छात्राओं को आकर्षित करने के लिए विद्यार्थी वृत्ति की व्यवस्था की गई है। यद्यपि विद्यार्थी वृत्ति का सुझाव प्रशंसनीय कदम है, लेकिन पर्याप्त नहीं है।

सुझावों के कार्यान्वयन से संबंधित समाधान

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उल्लिखित शिक्षक शिक्षा से संबंधित सिफारिशों के कार्यान्वयन में आने वाली प्रमुख समाधान निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझे जा सकते हैं।

1. **संरचनात्मक अस्थिरता संबंधित समाधानः** यहाँ शोध में यह पाया गया कि यदि अध्यापकों की अध्यापक शिक्षा को गुणवत्ता युक्त से परिपूर्ण बनाना है तो सबसे पहले भारत सरकार द्वारा लागू की गयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में किए गये परिवर्तन को स्थायी कर देना चाहिए और यह परिवर्तन कम से कम 10 वर्ष तक रहना नितांत रूप से आवश्यक घोषित कर देना चाहिए। अन्यथा इस परिवर्तन का भी शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता में कोई खास योगदान नहीं रह जाएगा।

2. **स्वरूपगत परिवर्तन से संबंधित चुनौती**– यदि निजी क्षेत्र के संस्थान इस क्षेत्र में काम करना चाहते हैं तो उन्हें इस शर्त के साथ अनुमति दी जानी चाहिए कि वे इस कार्य से मुनाफा कमाने की न सोचें और शिक्षक शिक्षा से संबंधित नीतियों का सख्ती से पालन करें। साथ ही स्वरुपगत परिवर्तनों से संबंधित चुनौतियों का सामना करने के लिए स्पष्ट नीति बने। सरकार वित्तीय एवं संसाधनों की उपलब्धता के प्रति अपनी जवाब देही को निभाए तथा निजी क्षेत्र के संस्थान इसे सेवा कार्य मानते हुए आर्थिक उपार्जन की क्षुद्र भावना से ऊपर उठते हुए नीति–नियमों का पालन कर शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखें।

3. **संसाधनों की कमी से सम्बंधित समाधानः** भारत सरकार को यह चाहिए कि शिक्षक शिक्षा को एक आवश्यक सेवा माने तथा प्रत्येक शिक्षक शिक्षा संस्थान को इन सभी सुविधाओं को पूर्णतया निःशुल्क स्थापित करने में मदद करना चाहिए। भारत में स्कूलों पर शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद का लगभग चार प्रतिशत खर्च करके इन सुविधाओं को उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है इसलिए ऐसी स्थिति में मजबूत और दृढ़–इच्छा शक्ति बनाकर सरकार को अगले तीन वर्षों में स्कूली शिक्षा पर व्यय का चार प्रतिशत को बढ़ाकर छह प्रतिशत करना ही उचित होगा और शोधकर्ता के अनुसार यदि इसको भविष्य में वर्ष 2035 में अमल में लाने के बदले वर्तमान में ही क्रियान्वित करना चाहिए। सभी शिक्षक शिक्षा की संस्थाओं चाहे वे सरकारी हों, गैरसरकारी हो या निजी स्कूल, इन सभी के लिए एक समान नियम सांगत नीति लागू हों। और इसी के साथ ही अभौतिक, भौतिक और मानव संसाधन से सम्बंधित सभी प्रकार के शैक्षिक और प्रशासनिक खर्चो को सरकार स्वयं वहन करें।

4. **भारतीय महाविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षणः** यह वर्तमान समय की सबसे समग्र और जटिल प्रक्रिया है, जिसमें एक विद्यार्थी और अध्यापक/शिक्षक एवं उन्हें प्रशिक्षित करने वाले प्राध्यापक प्रशिक्षक एक बढ़ते क्रम में योजनाबद्ध तरीके से आपस में सहयोगात्मक भाव से जुड़े होते हैं। यहाँ पर यह भी पाया गया है कि यदि शिक्षक शिक्षा में गुणवत्ता स्थापित करने के लिए पहल करते है तो सबसे पहले पहली आवश्यकता प्रशिक्षकों को जो एम०एड० में पढ़ा सकते हैं, की तैयारी की जाय, जो शिक्षक–प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित कर सकते हैं, क्योंकि शिक्षक, केवल प्रशिक्षक की क्षमता और ज्ञान के अनुसार तैयार किए जा सकते है नाकि उनके डिग्रीयों के आधार पर। मेरा मानना है कि इन सभी अध्यापक और शिक्षक प्रशिक्षकों की दक्षता भविष्य के प्राथमिक, उच्च प्राथमिक से लेकर माध्यमिक उच्चतर माध्यमिक शिक्षकों की क्षमता को प्रभावित करेगी, जो अंत में आकर विद्यार्थियों

के लिए समग्र समावेशी विकास को प्रभावित करेगी। यह भी मानना है कि एक प्रशिक्षु को क्या और कैसे सिखाना है? की तैयारी के लिए विद्यार्थी से लेकर शिक्षक प्रशिक्षक स्तर के सभी संबंधित व्यक्तियों पर भी विचार करना पड़ेगा। मेरा मानना है कि यदि भारत सरकार वर्तमान में एक शिक्षक प्रशिक्षक की तैयारी के लिए जरूरी सभी सुविधाएं, पाठ्यक्रम और योजनाएं तत्काल तैयार की ओर प्रेरित करता है तो शिक्षा का स्तर आगे बढ़ेगा।

5. **भारतीय शिक्षा के अनुसार प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को आकर्षित करने की चुनौती का समाधान:** यहाँ पर भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में अपेक्षा की गई है कि होनहार, प्रतिभाशाली और उच्च श्रेणी को प्राप्त करने वाले विद्यार्थी शिक्षक बनने के प्रति प्रेरित और आकर्षित हो। यहाँ पर यह पाया गया कि प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को आकर्षित करने के लिए विद्यार्थीवृत्ति की व्यवस्था की गई है। यहाँ पर यह भी देखा गया है कि यद्यपि विद्यार्थी वृत्ति का सुझाव प्रशंसनीय कदम है, लेकिन उतना पर्याप्त नहीं दिख रहा है। वास्तव में, यदि प्रतिभाशाली संपन्न व्यक्तियों को किसी भी प्रकार के व्यवसाय में आकर्षित करने के लिए उस क्षेत्र में शामिल होने के समान अवसर, सम्मानजनक वेतन, समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा और उसके योग्यता के अनुरूप व्यवसाय में काम करने के तरीके के साथ-साथ आगे बढ़ने के अवसर की अनुकूलता भी आवश्यक है। यहाँ पर यह भी पाया गया कि वर्तमान में ऐसा कुछ भी नहीं दिख रहा है, जो किसी व्यक्ति को केवल सरकारी या सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों में मिलने वाले वेतन, और सभी सुविधाओं को छोड़कर अध्यापक बनने के लिए प्रेरित करता हो। सरकारी विद्यालयों में शिक्षण प्रशासन के साथ-साथ शिक्षक से जिस तरह का काम लिया जाता है, वह व्यवसाय की गरिमा और समाज में इसकी प्रतिष्ठा को गंभीर रूप से नुकसान तो पहुँचा ही रहा है, इसके साथ ही साथ उसके विद्यालय में शैक्षिक कार्यों को नकारात्मक रूप से प्रभावित भी कर रहा है। शिक्षकों का शैक्षणिक कार्यों से अन्य बाह्य कार्य करने के कारण सरकारी विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक प्रगति भी प्रभावित होती जा रही है जबकि वहीं निजी/ पब्लिक संस्थाओं में अध्यापकों का वेतन तो इतना कम होता है कि इस तरह कोई भी प्रतिभाशाली होनहार विद्यार्थी सिर्फ मात्र मजबूरी में ही एक शिक्षक बनने की ओर सोच सकता है। अत: अगर हम वास्तव में इस क्षेत्र में प्रतिभाशाली होनहार विद्यार्थियों को अपने और आकर्षित करना चाहते हैं, तो हमें इस क्षेत्र में शामिल होने के लिए सभी प्रकार के समान अवसर, सम्मानजनक वेतन, समाज में क्षेत्र की सामाजिक प्रतिष्ठा और उसके व्यवसाय में काम करने के तरीके के साथ-साथ आगे बढ़ने के अवसर को भी सुनिश्चित करना का चाहेंगे।

6. **नयी शिक्षा के अनुरूप नए निर्मित पाठ्यक्रम को डिजाइन करने की चुनौतीयां**- यहाँ पर देखा जाय तो इस प्रकार के चुनौतीयों से सामना करने के लिए नवचारिक संरचनात्मक शिक्षण अधिगम पर आधारित शिक्षक-शिक्षण प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की आवश्यकता होगी, जिसके लिए विषय

विशेषज्ञों की एक विशिष्ठ टीम गठित की जानी चाहिए तथा सी०बी०एस०ई०, एन०सी०ई०आर०टी० एवं एस०सी०ई०आर०टी० आदि शिक्षण संस्थानों का सहयोग लेकर पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया को अभियान की तरह निश्चित समय सीमा के भीतर में पूर्ण किया जाना चाहिए, जिसमें नीति के साथ ही साथ उन सभी विद्यार्थियों के विकास एवं वृद्धि के विभिन्न चरणों में होने वाले परिवर्तन, उनकी अभिक्षमता एवं उनके हितों के साथ-साथ समाज की जरूरतों और सामाजिक सांस्कृतिक और संज्ञानात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए व्यवहारिक पाठ्यक्रम को निर्मित किया जाए।

7. **शिक्षक शिक्षा संस्थानों की गुणवत्ता को बनाए रखने संबंधी चुनौती का समाधानः** भारत सरकार को चाहिए कि स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति के कार्यान्वयन के लिए तैयार की जाने वाली योजना को उपरोक्त शिक्षा नीतियों को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जाना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी सभी शैक्षिक नियामक संस्थाएं एकदम से निडर होकर कार्य प्रगति की ओर होना चाहिए, फिर जाकर इस चुनौती को पार करने में कोई विशेष बाधा नहीं आएगी।

निष्कर्ष

भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षा, शिक्षार्थी और अध्यापक सभी का एक-दूसरे के साथ बहुत गहरा संबंध होता है, जहाँ शिक्षा, विकास की एक निरंतर प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत सीखने वाला विद्यार्थी उस विकास का लाभार्थी कहलाता है तो वही दूसरे तरफ शिक्षक इस पूरी प्रक्रिया का समन्वयक, निर्माता और प्रशासक कहलाता है। इसीलिए तो शिक्षा की प्रक्रिया को गुणात्मक और प्रभावशाली रूप में बनाने के लिए इक्कीसवीं सदी की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार द्वारा लागू की गयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का प्रारूप तैयार किया गया है, जिसके अंतर्गत शिक्षक शिक्षा के मुद्दे पर विशेष रूप में ध्यान दिया गया है। एक सन्दर्भ में याह भी पाया गया कि शिक्षक शिक्षा को एक नई दिशा देने के लिए जो सिफारिशें और अपेक्षाएँ की गई है, उन्हें पूरा करने में कई चुनौतियाँ भी होंगी, जिनकी ऊपर विस्तार पूर्वक चर्चा की जा चुकी है। यदि इस शिक्षा प्रक्रिया में शामिल सभी लोग पूरी ईमानदारी मेहनत के साथ कार्य प्रगति के ओर चलते है, तो उपरोक्त चुनौतियों का हल ढूंढकर भारतीय शिक्षा प्रणाली को फिर से विश्वस्तरीय बनाया जा सकता है। निश्चित तौर पर वो दिन दूर नहीं जहाँ पर भारत सरकार शिक्षा प्रणाली पूरे विश्व में एक शीर्ष स्थान प्राप्त करें। इसके लिए सिर्फ सरकार, समाज, शिक्षक, प्रबंध समिति एवं विद्यार्थियों के प्रयासों की जरूरत है। एन०ई०पी० शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान की गई शिक्षण दक्षता, गुणवत्ता और साफ तस्वीर में सभी उम्मीदवारों को पुरस्कार को लौटाने के बीच के पैमाने को संतुलित करने में एक लंबा रास्ता भी तय करेगा। भारत के शिक्षण पेशेवर इस तथ्य को जरुर ध्यान में रख सकते हैं कि आगामी भारतीय- एन०ई०पी० 2020 के तहत

अधिगम सीखने का अनुभव एक सतत प्रक्रिया है और यह हमेशा रहेगा। एन०ई०पी० शिक्षक प्रशिक्षण अनुभाग में आगे के अपडेट के लिए इस स्थान पर बने रहें।

सन्दर्भ सूची

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् 2006.
2. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005. रा.शै.अ.प्र.प. नयी दिल्ली।
3. 2010. पर्सपेक्टिव ऑन नईतालीम. रा.शे.अ.प्र.प., नयी दिल्ली।
4. शर्मा, वी.पी और आर शर्मा. 2015. अध्यापक प्रशिक्षण तकनीक, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
5. शिक्षा मंत्रालय 2020; राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. भारत सरकार, नयी दिल्ली. 12 दिसंबर, 2020 को *https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI opdf* से प्राप्त किया गया।
6. https://sarkarischool.in/nep-will-bring-fundamental-changes-in-school-education/
7. https://www.shikshaniti.com/2020/08/basic-literacy-and-numeracy.html#google_vignette.
8. https://www.amarujala.com/columns/blog/new-education-policy-in-india-and-its-effect-on-education-system-a-review?pageId=1
9. Choudhary, P. (2020). National Education Policy 2020: An Overview. Journal of Educational Research, 55(2), 77-86.
10. Chowdhury, S., & Sarkar, A. (2020). Emotional maturity: A critical aspect of the New Education Policy 2020. Indian Journal of Education, 5(2), 41-45. Retrieved from https://www.ije.in/index.php/ije/article/view/408
11. अलतेकर, ए. एस. 2014. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति अनुराग प्रकाशन, वाराणसी।
12. आहे. वी. एस. 1999. संस्कृत – हिंदी कोश. भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली।
13. कुमार. एन. 2016. अध्यापक शिक्षा. अर्जुन पब्लिशिंगहाउस, दिल्ली।
14. नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन. 2009. नयी दिल्ली।
15. नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर टीचर एजुकेशन, एन.सी.टी.ई., नयी दिल्ली।
16. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986. भारत सरकार, नयी दिल्ली।
17. 1998. नेशनल एजुकेशन पॉलिसी (ऐज मोडिफाईड 1992) 12 दिसंबर, 2020 को *https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document.reports/NPE86-mod92.pdf* से प्राप्त किया गया।
18. Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Retrieved from https://www.mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pd
19. Hettiarachchi, C. S., & Kularatne, K. A. (2020). Emotional Maturity and Psychological Well-being: An Exploratory Study. International Journal of Indian Psychology, 8(2), 111-125.
20. Kirchner, K. (2020). Emotional Maturity: What It Is and How to Develop It. Psych Central. https://psychcentral.com/lib/emotional-maturity-what-it-is-and-how-to-develop-it.
21. Ministry of Human Resource Development, Government of India. (2020). National Education Policy 2020: Emotional Maturity. Retrieved from https://mhrd.gov.in/nep-2020

22. Singh, P. (2020). New Education Policy 2020: Emotional Maturity in the Classroom. New Delhi: Cambridge University Press.

23. Sharma, K., & Sharma, A. (2020). New Education Policy 2020: Emotional Maturity and Teaching Strategies. New Delhi: Springer India.

24. Sinha, A., & Das, G. (2020). Emotional Maturity: An analysis of the New Education Policy 2020. Indian Journal of Psychology and Education, 4(2), 127-137.

25. Siegel, D. J. (2020). What Is Emotional Maturity and How Can We Cultivate It? Psychology Today. https://www.psychologytoday.com/us/blog/the-mindful-self-express/202005/what-is-emotional-maturity-and-how-can-we-cultivate-it

26. Prasad, S., & Jha, A. (2020). New Education Policy 2020: Emotional Maturity. New Delhi: Oxford University Press.

27. Pant, S. (2020). New Education Policy 2020: Developing Emotional Maturity. New Delhi: Sage Publications.

28. Jayakumar, P. M., & Saravanan, M. (2020). Emotional Maturity: A Conceptualization and Measurement. Indian Journal of Positive Psychology, 11(2), 198-211.

जगनिकभट्ट कृत आल्ह खण्ड (परमाल रासो) का वैशिष्ट्य

डॉ० भारतेन्दु कुमार पाठक
सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय, हजरतबल, श्रीनगर

यदि आदिकाल में सबसे जनप्रिय एक पुस्तक का चयन किया जाय, तो वह 'परमाल रासो' या आल्ह खण्ड नामक पुस्तक होगी। 'आल्ह खण्ड' नाम ही अधिक प्रचलित है, जबकि 'परमाल रासो' इतिहास ग्रन्थों में लिखित है।

यह ग्रन्थ अन्य भारतीय ग्रन्थों की भाँति मंगलाचरण से आरंभ होता है-

''सुमिरि भवानी जगदंबा को, श्री शारद के चरन मनाय।
आदि सरस्वती तुमको ध्यावौ, माता कण्ठ विराजों आय।।"

यह ग्रन्थ अवश्य सबको आकृष्ट करेगा, ऐसा रचनाकार की मान्यता है-

''वसु वसु तिथि आनंद सवैया, यारौ वीर पँवारा गाव।
यहै कहावत आल्ह छन्द है, सुनतैं मन माँ बाढ़े चाव।।"

ग्रन्थ में 'उत्साह' भाव की व्यंजना समान दिखायी देती है-

"बारह बरस लौ कूकुर जीये,
औ तेरह लौ जीये सियार।
बरस अठारह क्षत्रिय जीये
आगे जीये तो धिक्कार।।"

"ऐसा प्रसिद्ध है कि कालिंजर के राजा परमार के यहाँ जगनिक नाम के एक भाट थे, जिन्होंने महोबे के दो देश प्रसिद्ध वीरों आल्हा और उदल (उदय सिंह) के वीर चरित का विस्तृत वर्णन एक वीर गीतात्मक काव्य के रूप में लिखा था, जो इतना सर्वप्रिय हुआ कि उसके वीरगीतों का प्रचार क्रमशः सारे उत्तरी भारत में विशेषतः उन सब प्रदेशों में जो कन्नौज साम्राज्य के अन्तर्गत थे- हो गया। ये गीत 'आल्हा' के नाम से प्रसिद्ध है और बरसात में गाए जाते हैं। गाँवों में जाकर देखिए तो मेघ गर्जन के बीच में किसी अल्हैत के ढ़ोल के गंभीर घोष के साथ यह वीर हुंकार सुनाई देगी।"[1]

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि 'आल्ह खण्ड' आरंभ से ही प्रसिद्ध हो चला है और प्रकाशन व मंच की सहायता के बिना ही जनता का कंठहार बना रहा है। इसके कारण है- वीर रस का परिपाक व उत्साह भाव की व्यंजना। क्योंकि 'आल्हा और उदल परमार के सामंत थे और बनाफर शाखा के क्षत्रिय थे।'[2] यह उन्हीं के प्रशंसा में रचा गया जान पड़ता है। इस काव्य में साहित्यिक सौन्दर्य होने पर भी इसे लोक काव्य भी कह सकते हैं। "किसी प्रदेश की सभ्यता, संस्कृति, धार्मिक मान्यता एवं राजनीतिक उथल-पुथल का दिग्दर्शक उसका लोक साहित्य होता है। उसके द्वारा भौगोलिक सीमा, जल-वायु, रहन-सहन, रीति और रिवाज परम्पराओं का ज्ञान होता है।"[3]

इस काव्य में 'फुलवा मालिन' का उल्लेख मिलता है।

"फुलवा मालिन को बुलवाबौं, गूँथे मौरसिरी के हार।
सो पहिरावौ मैं देवी कौं, भूलेनाक्षर देहि सम्हार।।"[4]

युद्ध की देवी दुर्गा का भी स्मरण किया गया है-

"सुमिरि गणेशै के पग धरियै, भोरहिं लेत राम को नाम।
आदि सरस्वती तुमकौ ध्यावैं, औ दुर्गा के चरण मनाय।।"[5]
या- -धौरागिरी पर्वत के ऊपर , देवी पूजौ कदम तुम्हार।

कहीं-कहीं अनुप्रास व पुनरुक्ति प्रकाश का मधुर उदाहरण मिलता है-

"खट-खट-खट-खट तेगा करता,
छपक-छपक करती तलवार।"

कहावतें एवं लोकोक्तियों से यह काव्य भरा पड़ा है। यथा-

'बहता पानी रमता जोगी, ...।
या पानी भरती थी पनिहारी,
या लाख पातुरी हार छिपावे।

कहीं-कहीं सामान्य बातचित की शैली भी उपलब्ध है-

'रानी सुनो बात हमार।'

एक संतोष वृत्ति रचनाकार के द्वारा इस प्रकार प्रकट किया गया है-

''सदा तरैया ना बन फूलै, यारो सदा न सावन होय।
स्वर्ग मड़ैया सब काहू को, यारो सदा न जीवे कोय।।"

कहने का भाव है कि कवि जगनिक भट्ट द्वारा विरचित आल्ह-खण्ड सभी साहित्यिक गुणों से युक्त है। इसे साहित्यिक कृति कहेंगे, साथ ही लोक काव्य भी। देश के इतने विस्तृत क्षेत्रफल पर बिना प्रकाशन व प्रचार के अधिकार पाना विविध वैशिष्ट के कारण ही सम्भव है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ०-29, 38वाँ संस्करण संवत् 2057 वि., ना.प्र.सभा, वाराणसी।
2. वही, पृ०-29
3. आल्ह खण्ड-सं० डॉ० आशा गुप्त, पृ० 15, संस्करण-प्रथम-1999, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
4. वही, पृ०- 29
5. वही, पृ०-29

बिहार के स्वास्थ्य संरचना में आशा कार्यकर्ताओं की भूमिका

डॉ० सरोज कुमार
व्याख्याता (श्रम एवं समाज कल्याण विभाग)
लहटन चौधरी महाविद्यालय पस्तवार बलुआहा, सहरसा (बी.एन.एम.यू. मधेपुरा)

आशा कार्यक्रम का आरंभ I

भारत ने **राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM)** के एक भाग के रूप में वर्ष **2005-06** में आशा कार्यक्रम **(ASHA programme)** शुरू किया था। वर्ष 2013 में राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन **(NUHM)** के शुभारंभ के साथ इस कार्यक्रम का विस्तार शहरी क्षेत्र में भी कर दिया गया। आशा कार्यक्रम का मूल उद्देश्य समुदाय के सदस्यों का क्षमता निर्माण है ताकि वे अपने स्वयं के स्वास्थ्य की देखभाल कर सकें और स्वास्थ्य सेवाओं में भागीदार बन सकें।

आशा कार्यकर्ता I

- आशा कार्यकर्ता वो स्वयंसेवक हैं जिन्हें सरकार की विभिन्न स्वास्थ्य योजनाओं के लाभों को लोगों तक पहुँचने के लिए, लोगों को जानकारी प्रदान करने, सलाह देने और उनकी सहायता करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।
- आशा कार्यकर्त्ता हाशिए के समुदायों को प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों, उप- केंद्रों और जिला अस्पतालों जैसी सुविधाओं से जोड़ने वाले सेतु के रूप में कार्य करती हैं।
- इन सामुदायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवको (आशा बहुओं) की भूमिका पहली बार 2005 में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एनआरएचएम) के तहत स्थापित की गई थी।
- आशा समुदाय के भीतर की मुख्य रूप से 25 से 45 वर्ष की आयु वर्ग की विवाहित, विधवा या तलाकशुदा महिलाएं हैं।
- कार्यक्रम के दिशा-निर्देशों के अनुसार कक्षा 8 तक औपचारिक शिक्षा के साथ साक्षर होना चाहिए। साथ ही उनके पास अच्छा संचार और नेतृत्व कौशल होना चाहिए।
- वे ग्राम पंचायत (स्थानीय सरकार) द्वारा चुने जाते हैं और उनके प्रति जवाबदेह होते हैं।

आशा कार्यकर्ता का कार्य I

1. जागरूकता निर्माण

- वे अपने निर्दिष्ट क्षेत्रों में घर-घर जाकर बुनियादी पोषण, स्वच्छता प्रथाओं और उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में जागरूकता फैलाती हैं।
- मुख्य रूप से आशा कार्यकर्त्ता यह सुनिश्चित करती हैं कि महिलाएं प्रसव पूर्व जांच कराएं, गर्भावस्था के दौरान पोषण बनाए रखें, स्वास्थ्य सुविधा में सुरक्षित प्रसव कराएं, और बच्चों के स्तनपान और पूरक पोषण पर जन्म के बाद का प्रशिक्षण प्रदान करने पर ध्यान केंद्रित करें।

2. संक्रमणों की जांच और समय पर दवाएं

- उन्हें मौसम के दौरान मलेरिया जैसे संक्रमण की जांच का भी काम सौंपा जाता है।
- वे अपने अधिकार क्षेत्र के लोगों को बुनियादी दवाएं और उपचार जैसे मलेरिया के लिए क्लोरोक्वीन, एनीमिया को रोकने के लिए आयरन फोलिक एसिड की गोलियां और गर्भनिरोधक गोलियां भी प्रदान करती हैं।
- आशा कार्यकर्त्ता लोगों का परीक्षण भी करवाते हैं और गैर-संचारी रोगों के लिए उनकी रिपोर्ट प्राप्त करते हैं।
- कार्यक्रम के प्रत्यक्ष रूप से देखे गए उपचार के तहत टीबी रोगियों को प्रतिदिन दवाएं भी उपलब्ध कराती हैं।

3. महिलाओं और बच्चों की काउंसलिंग

- वे महिलाओं को गर्भ निरोधकों और यौन संचारित संक्रमणों के बारे में सलाह देती हैं।
- टीकाकरण के लिए प्रेरित करने का भी काम उन्हें सौंपा गया है।

महामारी प्रतिक्रिया में आशा नेटवर्क की भूमिका I

- आशा कार्यकर्ता सरकार की महामारी प्रतिक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थीं, अधिकांश राज्यों में नेटवर्क का उपयोग लोगों को नियंत्रण क्षेत्रों में स्क्रीनिंग करने, उनका परीक्षण करने और उन्हें क्वार्नटीन सेंटर में ले जाने में मदद करने के लिए किया जाता था।

- महामारी के पहले वर्ष के दौरान, जब हर कोई संक्रमण से डरता था, उन्हें घर-घर जाकर लोगों में कोविड-19 के लक्षणों की जांच करनी पड़ती थी।
- उन्हें काफी प्रताड़ना का भी सामना करना पड़ा क्योंकि संक्रमण को लेकर इतना कलंक था कि लोग उन्हें अंदर नहीं आने देना चाहते थे।

आशा कार्यकर्त्ताओं की प्रमुख समस्याएं

- ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं के सामने सबसे बड़ी समस्याओं में से एक सूचना की कमी है।
- चिंता का एक अन्य क्षेत्र संसाधनों की कमी है।
- चिकित्सा सुविधाओं की कमी है और प्रसव जैसी विभिन्न बुनियादी प्रक्रियाओं के लिए पर्याप्त उपकरणों की कमी है। सिकल सेल एनीमिया और एचआईवी जैसे साधारण परीक्षण नहीं किए जा सकते।
- **वैमनस्यपूर्ण रवैया:** आशाएं सामाजिक संबंधों के टूटने, विस्थापन के कारण आघात, और परिवार के सदस्यों, विशेष रूप से उनके पतियों द्वारा प्रताड़ित किये जाने संबंधी मामलों की रिपोर्ट करती हैं, जिनकी वे सेवा करती हैं। इस कारण कई मौकों पर, उनको समाज द्वारा तिरस्कार सहना पड़ता है।
- **सेवा शर्तों को हतोत्साहित करना :** आंगनवाड़ी में आगे के केरियर की सीमित संभावनायें, फ्रंटलाइन कार्यकर्ताओं (जैसे आंगनवाड़ी कार्यकर्ता (एडब्लूडब्लू) या आशा) की पर्याप्त संख्या का अभाव, कम मानदेय, काम का अधिक बोझ हतोत्साहित करने वाले कारक हैं।
- कोई स्थायी नौकरी नहीं : श्रमिकों के पास अन्य सरकारी कर्मचारियों की तरह व्यापक सेवानिवृत्ति लाभों के साथ स्थायी नौकरी नहीं है।

आगे की राह

- अगले 25 वर्षों का लक्ष्य ग्रामीण भारत में संसाधनों पर ध्यान केन्द्रित करना होना चाहिए।
- सरकार और ग्रामीण आबादी के बीच संचार के चैनलों को मजबूत बनाने की जरूरत है।
- एक घातक महामारी इन चैनलों के मूल्य को स्पष्ट करती है – लोगों तक सटीक सूचना को अधिक प्रभावी ढंग से पहुँचाने की आवश्यकता है।

- आशा कार्यकर्ताओं की भूमिका को औपचारिक बनाने की जरूरत है। उन्हें श्रमिकों के रूप में मान्यता देने से उन्हें सम्मान और सुरक्षा मिलती है। राज्य और ग्राम पंचायत को आशा कार्यकर्ताओं की भूमिका को समझने और उनको कार्य की उत्तम परिस्थितियां, गरिमापूर्ण मानदेय देने की आवश्यकता है।

बिहार में स्वास्थ संरचना पर आशा कार्यकर्ताओ की स्थिति I

- आशा कार्यकर्ता सरकार की महामारी प्रतिक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थीं, अधिकांश बिहार राज्यों में नेटवर्क का उपयोग लोगों को नियंत्रण क्षेत्रों में स्क्रीनिंग करने, उनका परीक्षण करने और उन्हें क्वार्नटीन सेंटर में ले जाने में मदद करने के लिए किया जाता था।
- महामारी के पहले वर्ष के दौरान, जब हर कोई संक्रमण से डरता था, उन्हें घर-घर जाकर लोगों में कोविड-19 के लक्षणों की जांच करनी पड़ती थी।
- उन्हें काफी प्रताड़ना का भी सामना करना पड़ा क्योंकि संक्रमण को लेकर इतना कलंक था कि लोग उन्हें अंदर नहीं आने देना चाहते थे।
- वे लोगों को पोषण, बुनियादी स्वच्छता एवं साफ-सफाई संबंधी अभ्यासों, स्वस्थ जीवन शैली एवं कार्य स्थिति आदि के बारे में सूचना प्रदान कर स्वास्थ्य निर्धारकों के संबंध में जागरूकता का सृजन करती हैं।
- वे महिलाओं को शिशु जन्म की तैयारी, सुरक्षित प्रसव के महत्त्व, स्तनपान, गर्भनिरोधक के प्रयोग, टीकाकरण, बच्चे की देखभाल और प्रजनन पथ संक्रमण/यौन संचारित संक्रमण (RTIs/STIs) की रोकथाम के बारे में सलाह देती हैं।
- बुखार, दस्त और छोटी-मोटी चोटों जैसे मामूली विकारों के लिये वे प्राथमिक चिकित्सा देखभाल प्रदान करती है।
- वे उप-केंद्रों/प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को अपने गाँव में प्रत्येक जन्म व मृत्यु और समुदाय में किसी भी बीमारी के प्रकोप या असामान्य स्वास्थ्य चिंताओं के बारे में सूचित भी करती रहती हैं।

संदर्भ सूची

1. आहार विज्ञानं एवं पोषण (लो०डॉ वृद्धा सिंह) पृ०स० 555, 556, 558
2. पोषण एवं स्वास्थ शिक्षा – पृ०स०13, 14, 15,
3. दैनिकी जागरण 11 जनवरी 2018 पृ०स०-8, 9
4. कुरुक्षेत्र अक्टूबर ग्रामीण स्वास्थ्य 2008 पृ०स०-55, 56

5. आहारिकी (वर्मा एक पाण्डेय) पृ०स०-105
6. +2 गृह विज्ञान (वर्मा एक पाण्डेय) पृ०स० -73
7. आलर पोषण एवं आहारिकी (डॉ० उषा वर्मा) पृ०स०-127
8. मातादर्श अगस्त 2009 पृ०स०-109, 110
9. शोध मिमानसा 2018:- पृ०स०61, 62, 63
10. इन्टरनेट (गूगल)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: शिक्षक-प्रशिक्षण में सुधार का अध्ययन

डॉ० लालमणि प्रजापति
असि० प्रोफेसर गाँधी पी० जी० कॉलेज समोधपुर, जौनपुर, उ०प्र०।

सारांश

किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके शिक्षकों पर निर्भर करती है। इस कथन को विज्ञान व विद्वान दोनों का समर्थन प्राप्त है। भारत में प्राचीन काल से उच्च शिक्षा संस्थाओं एवं शिक्षकों पर हमेशा से ही प्रश्न चिन्ह लगते रहते है। ऐसे में यह अनिवार्य हो जाता है कि हम अपने सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियों को न केवल शिक्षक बनने के लिए आमंत्रित करें, वरन् उन्हें उपयुक्त प्रशिक्षण भी दें। शिक्षकों के लिए अगले दो साल के भीतर न्यूनतम डिग्री बी०एड० तय होगी, जो उनकी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर एक से चार साल की होगी। ये एम०ए० के बाद एक साल और इंटरमीडिएट के बाद चार साल की होगी। शिक्षा नीति में वर्ष 2022 तक नेशनल काउंसिल फॉर टेक्निकल एजुकेशन (एनसीटीई) को टीचर्स के लिए एक समान मानक तैयार करने को कहा गया है।

परिचय

नीति यह मंतव्य रखती है कि शिक्षक शिक्षा को केवल बहु- विषयक संस्थानों में ही संचालित किया जाना चाहिए। इस मंतव्य के दृष्टिगत यह नीति वर्ष 2030 तक सभी एकल शिक्षा संस्थानों को बहु-विषयक संस्थानों के रूप में बदलने का लक्ष्य रखती है। शिक्षक को एक परिवर्तन एजेंट के रूप में देखा जाना चाहिए न कि केवल ज्ञान और संस्कृति के संप्रेषक के रूप में। अपने नागरिकों के बीच ज्ञान के प्रसार और विचार की स्वतंत्रता के प्रति भारत की प्रतिबद्धता इसके संविधान में परिलक्षित होती है। शिक्षकों की अनुपस्थिति और स्कूल की कक्षाओं में निष्क्रियता के संसाधन बर्बाद हो जाते हैं। भारत में शिक्षक अनुपस्थिति पुरानी है, और केवल आधे शिक्षक जो वास्तव में कक्षा में मौजूद हैं, सक्रिय रूप से पढ़ा रहे हैं। भारत में शिक्षक जवाबदेही की कमी खराब निगरानी, उच्च स्तर के भ्रष्टाचार, शिक्षक संघों के प्रभाव और शक्ति, शिक्षकों को नियुक्त/ निकालने में असमर्थता, वरिष्ठता-आधारित वेतन संरचना, और शिक्षा प्रणाली की अत्यधिक केंद्रीकृत प्रकृति से उपजी है। नई शिक्षा

नीति के अनुसार जल्द ही शिक्षकों के लिए राष्ट्रीय स्तर का मानक तैयार होगा, जो उनकी शैक्षणिक योग्यता के आधार पर एक से चार साल की होगी, ये एम०ए०के बाद एक साल और इंटरतीडिएट के बाद चार साल की होगी। शिक्षा नीति में वर्ष 2022 तक नेशनल काउंसिल फॉर टेक्निकल एजुकेशन (एनसीटीई) को टीचर्स के लिए एक समान मानक तैयार करने को कहा गया है, ये पैरामीटर नेशनल प्रोफेशनल स्टैंडर्ड फॉर टीचर्स कहलांएगे, काउंसिल यह कार्य जनरल एजुकेशन काउंसिल के निर्देशन में पूरा करेगी।

शब्द कुंजी:- शिक्षक, शिक्षक- प्रशिक्षण, नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

शिक्षक

बच्चे भविष्य के राष्ट्र निर्माता होते हैं, यह बात तो हम सभी जानते हैं परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा बच्चे अपने राष्ट्र को एक नई ऊंचाई तक ले जा सकते हैं। जब शिक्षा किसी राष्ट्र का भविष्य तक तय कर सकती है तो ऐसे में इस शिक्षा को बच्चों तक पंहुचाने वाले व्यक्ति के कंधों पर एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है। उस व्यक्ति को हम गुरू, अध्यापक, शिक्षक आदि नामों से जानते हैं। शिक्षक के द्वारा व्यक्ति के भविष्य को बनाया जाता है एवं शिक्षक ही वह सुधार लाने वाला व्यक्ति होता है। प्राचीन भारतीय मान्यताओं के अनुसार शिक्षक का स्थान भगवान से भी ऊँचा माना जाता है क्योंकि शिक्षक ही हमें सही या गलत के मार्ग का चयन करना सिखाता है। इस बात को कुछ ऐसे प्रदर्शित किया गया है- "गुरूः ब्रह्मा गुरूर् विष्णुः गुरूः देवो महेश्र्वरः गुरूः साक्षात् परम् ब्रह्म तस्मै श्री गुरूवे नमः।"

कबीर कहते हैं "गुरू गोविंद दोऊ खड़े काके लागू पांय बलिहारी गुरू आपनों गोविंद दियो बताया।" आम तौर से समाज को बुराई से बचाता है और लोगों को एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति बनाने का प्रयास करता है। इसलिए हम यह कह सकते है कि शिक्षक अपने शिष्य का सच्चा पथ प्रदर्शक है।

शिक्षण

शिक्षण एक सामाजिक प्रक्रिया है। शिक्षण शब्द अंग्रेजी भाषा के टीचिंग शब्द से मिलकर बना है, जिसका तात्पर्य है- सीखाना। शिक्षण एक त्रियामी प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षक और छात्र, पाठ्यक्रम के माध्यम से अपने स्वरूप को प्राप्त करते हैं। अर्थात किसी विषय वस्तु को माध्यम बनाकर शिक्षक एवं शिक्षार्थी के बीच विचारों के आदान-प्रदान या परस्पन अंतःप्रक्रिया को ही हम शिक्षण कहते हैं,

शिक्षण के व्यापक अर्थ में वह सब शामिल कर लिया जाता है जो व्यक्ति अपने पूरे जीवन में सीखता है। अर्थात शिक्षण का व्यापक अर्थ वह है, जिसमें व्यक्ति औपचारिक, अनौपचारिक एवं निरौपचारिक साधनों के द्वारा सीखता है। इसमें शिक्षार्थी जन्म से लेकर मृत्यु तक अपनी समस्त शक्तियों का उत्तरोत्तर विकास करता रहता है।

एच० सी० मॉरिसन के अनुसार, "शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें अधिक विकसित व्यक्तित्व के अग्रिम शिक्षा के लिए विकसित व्यक्तित्व की व्यवस्था करता है"

बी० एफ० स्किनर के अनुसार, "शिक्षण पुनर्वलन के आकस्मिकताओं का क्रम है।"

बर्टन क अनुसार, "शिक्षण सीखने के लिए दी जाने वाली प्रेरणा, निदेशन एवं प्रोत्साहन है।"

रायबर्न के अनुसार, "शिक्षण के तीन बिन्दु हैं- शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यवस्तु। इन तीनों के बीच संबंध स्थापित करना ही शिक्षण है। यह सम्बंध बालक की शक्तियों के विकास में सहायता प्रदान करता है।"

व्यवस्था की दृष्टि से शिक्षण तीन प्रकार का हो सकता है-

(i) **औपचारिक शिक्षणः** इसमें शिक्षण सौद्देश्यपूर्ण होता है। शिक्षण आयु, समय, एवं स्थान के अनुसार एक सुनिश्चित पाठ्यक्रम के आधार चलता है।

(ii) **अनौपचारिक शिक्षणः** इस प्रकार के शिक्षण का स्वरूप औपचारिक शिक्षण से भिन्न होता है। पाठ्यक्रम समय, स्थान एवं आयु से बँधा हुआ नहीं होता। शिक्षण ग्रहण करने वाला भी अपने आप अनपेक्षित रीति से ज्ञान, विचार या कोई विश्वास ग्रहण कर लेता है।

(iii) **निरौपचारिक शिक्षणः** इसमें शिक्षण निश्चित उद्देश्यों के आधार पर संगठित किया जाता है, किन्तु इसमें किसी पाठ्यक्रम, समय, स्थान एवं आय का बन्धन नहीं रहता।

प्रशिक्षण

प्रशिक्षण का अर्थ है, किसी कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए कर्मचारियों के अंदर कौशल तैयार करना ताकि कार्य को कुशलता तथा निपुणता के साथ कर सकें।

साधारण भाषा में, हम प्रशिक्षण को ट्रेनिंग कह सकते हैं, ट्रेनिंग के जरिए किसी संस्था के कर्मचारियों को किसी कार्य को करने के लिए तैयार किया जाता है तथा उनके बुद्वि तथा कौशल में वृद्वि की जाती है।

एडविन बी. फ्लिप्पो के अनुसार: "किसी विशेष कार्य को करने के लिए कर्मचारियों के ज्ञान, कौशल में वृद्वि करने से संबंधित क्रिया को प्रशिक्षण कहते हैं।"

डेल एस. बीच के अनुसार: "प्रशिक्षण एक ऐसी संगठित कार्यविधि है जिसके द्वारा लोग किसी निश्चित उद्देश्य के लिए ज्ञान एवं कौशल सीखते हैं।"

माइकल जे. जूसियस के अनुसार : "प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विशिष्ट कार्य को संपादन संपन्न करने हेतु कर्मचारियों की योग्यताओं में, वृद्वि की जाती है।"

प्लाण्टी, कोर्ड एवं इ्रर्सन के अनुसार: "प्रशिक्षण सभी स्तर के कर्मचारियों के ज्ञान व कंपनी के विकास तथा कल्याण में योगदान देते हैं।"

प्रशिक्षण के प्रकार इस प्रकार से है-

(i) **नौकरी प्रशिक्षण:** यह प्रशिक्षण उन कर्मचारियों को दिया जाता है जो पहले से ही नौकरी कर रहे हैं, और इस प्रकार के प्रशिक्षण को देने का उद्देश्य कर्मचारियों को अधिक कुशल बनाने के लिए होता है ताकि वे बेहतर से बेहतर प्रदर्शन कर सकें, और नौकरियों में दी जाने वाली शस्त्रों व उपकरणों को सही ढ़ंग से उपयोग कर सकें।

(ii) **पदोन्नति प्रशिक्षण:** इस प्रकार का प्रशिक्षण तब दिया जाता है जब किसी कर्मचारी को निम्न पद से उच्च पद के लिए नियुक्त किया जाता है। इस प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों में आत्मविश्वास के साथ उच्च पदों की जानकारियाँ देना है।

(iii) **पुनर प्रशिक्षण:** यह प्रशिक्षण कर्मचारियों के ज्ञान को तरोंताजा रखने के लिए दिया जाता है। समय बीतने के साथ-साथ कर्मचारी अपने प्रशिक्षण को भूलने लगते हैं इस वजह से समय- समय पर पुनर परीक्षण के द्वारा उन्हें पुर प्रशिक्षण दिया जाना बहुत आवश्यक है। ताकि वे अपने कर्तव्यों का पालन सही तरीके से कर सकें।

शिक्षक प्रशिक्षण : शिक्षक प्रशिक्षण स्वयं को व्यक्त करने की कला में शिक्षकों की मदद करता है। नियमित प्रशिक्षण और प्रतिक्रिया शिक्षकों के मौजूदा ज्ञान को शैक्षणिक रूझानों में बनाए रखती है और जो काम करती है उसे सुदृढ़ करती है। प्रभावी शिक्षण और कक्षा प्रबंधन कौशल रखने के लिए शिक्षकों के लिए महत्वपूर्ण है।

शिक्षक- प्रशिक्षण में सुधार : शिक्षक- प्रशिक्षण स्वयं को व्यक्त करने की कला में शिक्षकों की मदद करता है। नियमित प्रशिक्षण और प्रतिक्रिया शिक्षकों के मौजूदा ज्ञान को शैक्षणिक रूझानों में बनाए रखती है और जो काम करती है उसे सुदृढ़ करती है। प्रभावी शिक्षक और कक्षा प्रबंधन

कौशल रखने के लिए शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण भी महत्वपूर्ण है। शिक्षकों को सीखने या नई शिक्षण रणनीतियों को बनाने में मदद करने के लिए प्रशिक्षण सत्रों की आवश्यकता होती है जो कक्षाओं में अपने छात्रों की रूचि को वापस लाएंगे और सीखने को प्रोत्साहित करेंगे। शिक्षक- प्रशिक्षण स्वयं को व्यक्त करने की कला में शिक्षकों की मदद करता है। नियमित प्रशिक्षण और प्रतिक्रिया शिक्षकों के मौजूदा को शैक्षणिक रूझानों में बनाए रखती है और जो काम करती है उसे सुदृढ़ करती है। प्रभावी शिक्षण और कक्षा प्रबंधन कौशल रखने के लिए शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण भी महत्वपूर्ण है।

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020: शिक्षा के संबंध में गांधी जी का तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है। इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि मनुष्य की अंर्तनिहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। इन्हीं सब चर्चाओं के मध्य हम देखेंगे कि 1986 की शिक्षा नीति में ऐसी क्या कमियाँ रह गई थीं जिन्हें दूर करने के लिये नई राष्ट्रीय नीति को लाने की आवश्यकता पड़ी। साथ ही क्या यह नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति उन उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम होगी जिसका स्वप्र महात्मा गांधी और स्वामी विवेकानंद ने देखा था?

सर्वप्रथम नई शिक्षा नीति 2020 की घोषण के साथ ही मानव संसाधन मंत्रालय का नाम बदलकर शिक्षा मंत्रालय कर दिया गया है। इस नीति द्वारा देश में स्कूल एवं उच्च शिक्षा में परिवर्तनकारी सुधारों की अपेक्षा की गई है। इसके उद्देश्यों के तहत वर्ष 2030 तक स्कूली शिक्षा में 100 प्रतिशत GER के साथ-साथ पूर्व-विद्यालय से माध्यमिक स्तर तक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य रखा गया है। शिक्षकों की नियुक्ति में प्रभावी और पारदर्शी प्रक्रिया का पालन तथा समय-समय पर किये गए कार्य-प्रदर्शन आकलन के आधार पर पदोन्नति। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा वर्ष 2022 तक 'शिक्षकों के लिये राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक' का विकास किया जाएगा। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा एन०सी०टी०ई० के परामर्श के आधार पर अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का विकास किया जाएगा। वर्ष 2030 तक अध्यापक के लिये न्यूनतम डिग्री योग्यता 4 वर्षीय एकीकृत बी०एड० डिग्री का

किसी भी देश में विद्यार्थियों का भविष्य उसके शिक्षकों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। प्रत्येक देश की शिक्षा व्यवस्था पर उस देश की देश, काल, और परिस्थितियों पर निर्भर करता है, इसलिए शिक्षा नीति देश काल परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। वर्तमान परिस्थितियों को देखकर शिक्षा में बदलाव किया गया और नई राट्रीय शिक्षा नीति 2020 लाया गया। राट्रीय शिक्षा नीति 2020 में कहा गया है कि:- नई शिक्षा में छात्रों और राष्ट्र के लिए सर्वोत्तम संभव भविष्य सुनिश्चित करने के लिए शिक्षकों की प्रेरणा और सशक्तिकरण की आवश्यकता है। नई शिक्षा नीति 2020 के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता वैसी नहीं है जैसी होनी चाहिए और

परिणामस्वरूप शिक्षकों की गुणवत्ता वांछित मानकों को प्राप्त नही कर पा रही है। ऐसे में लोगों द्वारा यह प्रश्न पूछना स्वाभाविक है कि "शिक्षक शिक्षा में क्या बदलाव होना चाहिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में सबसे बढ़ बदलाव शिक्षक–प्रशिक्षण के कार्यक्रमों में होना है जैसे:– शिक्षक –प्रशिक्षण का समय और उसकी प्रकृति। वर्तमान समय में कुल लगभग 17 कार्यक्रम चलायें जा रहे है जो वर्तमान की समय के अनुकूल नहीं है अत: नई शिक्षा नीति 2020 ने मुख्यत: तीन कार्यक्रम चलाने का निर्णय लिया है पहला बी०एड० को चार वर्षीय एकीकृत कार्यक्रम, जो डुअल मोड में चलाया जाना है, जिसमें विद्याथियों को स्नातक डिग्री के साथ–साथ प्रशिक्षित शिक्षक की उपाधि मिलेगी। दूसरा द्विवर्षीय बी०एड० पाठ्यक्रम जो वर्तमान में संचालित कार्यक्रम हो रहा है जिसमें तीन वर्षीय स्नातक करने वाले को प्रवेश मिलेगा और एक वर्षीय बी०एड० पाठ्यक्रम जिसमें चार वर्ष की स्नातक डिग्री प्राप्त विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे। इन तीनों पाठ्यक्रमों में छात्र प्रवेश ले इसके लिए छात्रों को नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा छात्रवृत्ति की व्यवस्था का व्यवस्था किया गया है। इसके साथ–साथ नई शिक्षा नीति 2020 ओपन डिस्टेंस लर्निंग के माध्यम से भी शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाने की अनुमति प्रदान करता है।

नई शिक्षा नीति 2020 में दूसरा बदलाव शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम जिस संचालित करने वाली संस्थानों में है। नई शिक्षा नीति में यह व्यवस्था है कि शिक्षक शिक्षा को केवल बहु– विषयक संस्थानों में संचालित करने का लक्ष्य रखा गया है। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में गुणवत्ता को सुधारने के लिए एक वर्ष तक का समय दिया जायेगा अगर इस प्रकार के शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों एक वर्ष अन्तर अपने गुणवत्ता में सुधार नहीं करते तो उन पर कठोर कार्यवाही की जायेगी।

नई शिक्षा नीति 2020 में तीसरा प्रमुख्य बदलाव शिक्षक की प्रवेश प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या में है। शिक्षक– प्रशिक्षण में प्रवेश की प्रक्रिया में प्रर्दशिता लाने के लिए राष्ट्रीय टेस्टिंग एजेन्सी द्वारा ली गई प्रवेश परीक्षा के द्वारा लिया जायेगा। पाठ्यक्रम में नई शिक्षा नीति 2020 ने कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है जैसै: समाजशास्त्र, इतिहासत्र मनोविज्ञान, प्रारंभिक बाल्यावस्था, संख्या ज्ञान, और भारत से जुड़े ज्ञान और इसके मूल्यों/ लोकचार/ कला/ परंपराएं आदि का समावेशन पर बल देती है। शिक्षक शिक्षा में नई पाठ्यचर्या रूपरेखा को तैयार किये जाने की संस्तुति करती है।

नई शिक्षा नीति में चौथे बदलाव के रूप में इस नीति में सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों भी है। नई शिक्षा नीति में सेवारत शिक्षकों और महाविद्यालय के प्राचार्यो दोनों से प्रत्येक वर्ष में 50 घण्टे का सी०पी०डी० (सतत् व्यावसायिक विकास) कार्यक्रमों में भाग लेने की अपेक्षा की गयी है। सेवारत शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए नई शिक्षा नीति में निम्नलिखित व्यवस्था कि गई है जैसे: स्थानीय, क्षेत्रीय, राज्य, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर की कार्यशालाओं के साथ ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम

से भी प्रशिक्षण देने की बात इस नीति में है। इस नीति में शिक्षकों के मार्गदर्शन के लिए एवं सलाह के लिए एक राष्ट्रीय मिशन स्थापित करने की योजना बनाई गई है। इस प्रकार के राष्ट्रीय मिशन में उच्च कोटि के वरिष्ठ व सेवानिवृत संकाय सदस्यों को जोड़ने की योजना है।

नई शिक्षा नीति 2020 में पांचवा बड़ा बदलाव "राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद" की भूमिका में किया जाना है। नई शिक्षा नीति एन०सी०टी०ई० की रेगुलेटरी पावर को राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा विनियामक परिषद (एन०एच०ई०आर०सी०) को सौंपने की सिफारिश करती है। नई शिक्षा नीति 2020 एन०सी०टी०ई० से सामान्य शिक्षा परिषद् (जी०ई०सी०, जो स्थापित की जाएगी) के सदस्य के रूप में पाठ्यक्रम संरचना, शैक्षणिक मानकों को निर्धारित करने, विभिन्न विषयों के शिक्षण एवं अनुसंधान और विस्तर के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की अपेक्षा रखती है।

नई शिक्षा नीति 2020 में छठा बदलाव विशिष्ठ एवं व्यावसायिक शिक्षा को शिक्षक शिक्ष के विमर्श के दायरे में लाना को ले कर है। विद्यालयी शिक्षा में दिव्यांग व सीखने में कठिनाई वाले छात्रों की शिक्षा के लिए सामान्य शिक्षकों को विशेष शिक्षकों के रूप में तैयार करने पर बल देती है। इस हेतु शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए अनेक कार्यक्रम चलाये जाने का प्रवधान है।

निष्कर्ष

किसी भी देश या राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। देश या राष्ट्र में बदलाव के लिए शिक्षा में बदलाव अति आवश्यक है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने शिक्षण–प्रशिक्षण शिक्षा में निम्नलिखित बदलाव करने की स्फारिश की है जैसे: पहला बी०एड० को चार वर्षीय एकीकृत कार्यक्रम, दूसरा बदलाव शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम जिस संचालित करने वाली संस्थानों में है, तीसरा प्रमुख्य बदलाव शिक्षक की प्रवेश प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या में है, चौथे बदलाव के रूप में इस नीति में सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों भी है, पांचवा बड़ा बदलाव "राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद" की भूमिका में किया जाना है, छठा बदलाव विशिष्ठ एवं व्यावसायिक शिक्षा को शिक्षक शिक्ष के विमर्श के दायरे में लाना को ले कर है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि नई शिक्षा नीति 2020 द्वारा शिक्षक– प्रशिक्षण में बदलाव की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. सिंह, डॉ० शिवपाल: शिक्षक, शिक्षण एवं तकनीकी : आर० लाल० पब्लिकेशन।
2. कुमारी, विनोद: शिक्षक, शिक्षण एवं तकनीकी : ठाकुर पब्लिकेशन, लखनऊ।

3. भटनागर, डॉ० ए.बी. एवं डॉ. अनुराग: शिक्षक, शिक्षण एवं तकनीकी : आर० लाल० पब्लिकेशन।

4. मीना, कैलाश: सेवारत अध्यापक प्रशिक्षण के उद्देश्य, महत्व, आवश्यकता : कैलाश एजूकेशन, www.kailasheducation.com.

5. कुमरी, राखी एवं गुप्ता, विजय: सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण की अवधारणा: पद

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education.

आजमगढ़ जनपद के बूढ़नपुर तहसील के माध्यमिक स्तर के छात्रों की चिंता का उनके शैक्षिक आंकाक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

चन्द्रशेखर प्रजापति

शोध छात्र, गांधी स्मारक पी०जी० कालेज, समोधपुर, जौनपुर, उ०प्र०।

सारांश

चिन्ता किसी वर्तमान स्थिति या आगामी घटना के बारे में तनाव के लिए आपकी एक सामान्य शारीरिक प्रतिक्रिया है। यह प्रतिक्रिया आपके प्रमस्तिष्क में शुरू होती है, जो की मस्तिष्क का एक क्षेत्र है जो हाइपोथैलेमस को संकट के संकेत भेजता है। इन संकेतों को तब शरीर के बाकी हिस्सों में लड़ाई या उड़ान प्रतिक्रिया उत्पनन करने के लिए भेजा जाता है। प्रस्तुत शोध के माध्यम से आजमगढ़ जनपद के बूढ़नपुर तहसील के माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की चिन्ता का प्रभाव एवं उनके शैक्षिक आकांक्षा पर देखा गया है। चिन्ता का शैक्षिक आकांक्षा से नकारात्मक संबंध स्पष्ट हुआ है।

मुख्य शब्दः चिंता, शैक्षिक आकांक्षा

प्रस्तावना

चिंता एक मनोवैज्ञानिक समस्या है जो किसी व्यक्ति को भावी हानिकारक परिस्थिति के प्रति सजग करती है। चिन्ता का स्वरूप सदैव नाकारात्मक होता है। इसके कारण व्यक्ति के बुद्वि, सृजनात्मकता, मनन करने की क्षमता, याद करने की क्षमता आदि पर बहुत गलत प्रभाव पड़ता है। जब व्यक्ति चिंतित रहता है तब उसे किसी भी समस्या का हल नहीं निकल पाता है। इससे कुछ व्यक्ति बाहर निकल पाते है और कुछ व्यक्ति बाहर निकलने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

चिंता संज्ञानात्मक, शारीरिक, भावनात्मक और व्यवहारिक विशेषतावाले घटकों की मनोवैज्ञानिक और शारीरिक दशा है। यह घटक एक अप्रिय भाव के लिए जुड़ते हैं जो की आम तौर पर बेचैनी, आशंका, डर और क्लेश से सम्बंधित हैं। चिंता एक सामान्यकृत मनोदशा है जो कि प्रायः न पहचाने जाने योग्य किसी उपन द्वारा उत्पन्न हो सकती है। फायड ने चिंता को एक दुखद अवस्था माना है।

जो कि अंह से संबंधित है। यह व्यक्ति को भावी खतरों का संकेत करती है। ताकि वह सुरक्षा का प्रबन्ध कर सके।

शैक्षिक आकांक्षा

सही अर्थो में शैक्षिक आंकाश वह जो हम अपने शिक्षा के क्षेत्र में तथा भविष्य में किसी कार्य को इतना अच्छा करने का प्रयास करें कि वह हमारे द्वारा निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति का साधन बन जाये। शैक्षिक आकांश शैक्षिक लक्ष्यों को दर्शाती है जो एक व्यक्ति स्वयं के लिए निर्धारित करता है। यह महत्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यक्ति को उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित और सक्रिया करता है।

सोरेन्सन के अनुसार–"आकांक्षा व्यक्ति के लक्ष्यों का निर्धारण करने वाली प्रेरणा शक्ति है।"

साहित्य पुनरावलोकन

चिन्ता से संबंधित साहित्य पुनरावलोकन

सिरोही (2004), ने दक्षिण दिल्ली के विद्यालय में कक्षा दस में पढ़ने वाले के 1000 छात्रों पर एक अध्ययन किया। इस अध्ययन में उन्होंने पाया कि छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि को उनकी अध्ययन आदत, मानसिक संघर्ष, भावात्मक विश्वास एवं परीक्षाएँ सभी संयुक्त रूप से प्रभावित करती है।

शर्मा आशा (2005), ने विज्ञान तथा कला दोनों स्ट्रीम के दलित छात्र एवं छात्राओं की शैक्षणिक उपलब्धि पर बहुमुर्खता तथा चिंता के सहसंबंधों के प्रभाव का अध्ययन किया और अपने अध्ययन में यह प्राप्त किया कि अंतर्मुखी छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि बहिर्मुखी छात्रों की तुलना में उच्च होती है। दलित छात्र–छात्रों की अंतर्मुखी तथा शैक्षणिक उपलब्धि तथा चिंता एवं शैक्षणिक उपलब्धि के बीच सकारात्मक सह संबंध पाया।

दास सुमित कुमार, हलधर उज्जवल कुमार और मिश्रा बापी (2014) ने अपने शोध माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में अध्ययनरत् छात्रों की शैक्षिक चिन्ता और शैक्षिक उपलब्धि के अध्ययन में यह पाया है कि चिन्ता, शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करता है।

इफ्तिखार फरीह (2022) ने अपने शोध परीक्षा, परिणाम छात्रों में चिंता के प्रमुख कारण में यह पाया कि माध्यमिक स्तर के छात्रों में परीक्षा और उसके परिणाम में चिंता की प्रमुख्य भूमिका है अर्थात् चिंता, परीक्षा और उसके परिणाम को प्रभावित करता है।

शैक्षिक आकांक्षा से संबंधित अध्ययन

भारद्वाज एवं प्रभुदयाल (2019), ने अपने अध्ययन 'माध्यमिक स्तर पर मुस्लिम समुदाय के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन' में यह पाया कि मुस्लिम समुदाय के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा में सार्थक अंतर है।

पाण्डेय, पी०पी० (2020), ने अपने अध्ययन 'किशोर बालक एवं बालिकाओं की आकांक्षा स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव' में यह पाया कि किशोर बालक एवं बालिकाओं की आकांक्षा स्तर पर उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव है।

नारायण शिव एवं गोर रस्मी (2022), 'ने अपने शोध माध्यमिक स्तर के उच्च एवं निम्न शैक्षिक उपलब्धि वाले विद्यार्थियों' में यह पाया कि उच्च शैक्षिक उपलब्धि वाले छात्रों में शैक्षिक आकांक्षायें अधिक होती है।

शोध की आवश्यकता एवं महत्व

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता ने माध्यमिक स्तर के छात्रों की चिंता स्तर का उनके शैक्षिक आकांक्षा पर प्रभाव का अध्ययन किया जाएगा। माध्यमिक स्तर के छात्रा मुख्यतया किशोरवस्था में होते हैं। अत: उनके चिंता स्तर को जानना आवश्यक है। साथ हीं उनके शैक्षिक आकांक्षा को चिंता कितना करती है, यह जानना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि चिंता के कारण शैक्षिक आकांक्षा स्तर कम होता है तो इससे उन छात्रों के भविष्य में विकास की सम्भावना कमजोर होती है। अत: उनके चिंता के कारणों को दूर कर शैक्षिक आकांक्षा स्तर को बढ़ाने का सुझाव देने के कारण यह शोध बहुत हीं महत्वपूर्ण है।

समस्या कथन

प्रस्तुत शोध का शीर्षक है "आजमगढ़ जनपद के बूढ़नपुर तहसील के माध्यमिक स्तर के छात्रों की चिंता का उनके शैक्षिक आंकाक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन" रखा गया है।

शोध उद्देश्य

- छात्र एवं छात्राओं के चिंता स्तर को ज्ञात करना ।
- छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा को ज्ञात करना।

- छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक आकांक्षा एवं चिंता स्तर में सम्बंध ज्ञात करना।

परिकल्पना

1. छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा एवं चिंता स्तर में कोई सार्थक संबंध नहीं है।

सीमांकनः प्रस्तुत शोध में आजमगढ़ जनपद के बूढ़नपुर तहसील के छात्रों के चिंता स्तर एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर में तुलना की गई हैं।

सीमाएँः समय एवं धन की दृष्टि से छोटे प्रतिदर्श के रूप में 50 प्रतिदर्श रखे गए है।

शोध विधिः प्रस्तुत शोध में वर्तमान स्थिति के अध्ययन के लिए है। अतः वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

समग्रः प्रस्तुत शोध में दरभंगा नगर के माध्यमिक विद्यालयों के कक्षा 10 के छात्रों को समग्र के रूप में रखा गया है।

प्रतिदर्श का आकार एवं चयन विधिः प्रस्तुत शोध में आजमगढ़ जनपद के बूढ़नपुर के माध्यमिक विद्यालयों से स्तरित प्रतिदर्श चयन विधि से कुल 60 (30 छात्र एवं 30 छात्राओं) का चयन किया गया है।

उपकरण– 1. प्रस्तुत शोध में चिंता स्तर मापने के लिए डॉ० अनिल कुमार का सामान्य चिंता मापनी का प्रयोग किया गया है। जिसमें कुल 45 प्रश्न है। जिनका उत्तर हाँ पर 1 अंक अर्थात् कुल 45 अंक तक प्राप्त होंगे। कम अंक होना कम चिंता और अधिक अंक होना अधिक चिंता का सूचक होगा।

2. शर्मा, वी० पी० एवं गुप्ता अनुराधा द्वारा निर्मित शैक्षिक आंकाक्षा मापनी जो आगराः नेशनल साइकलोजिकल कॉरपोरशन से प्रकाशित है। इसमें कुल 45 प्रश्न हैं। प्रत्येक प्रश्न में दो विकल्प हैं। सही विकल्प के लिए 1 अंक है। कुल 45 अंक का उपकरण है।

आँकड़ा संग्रह विधिः प्रस्तुत शोध में आँकड़ों का संग्रह परीक्षा विधि द्वारा किया गया है।

आँकड़ा विश्लेषण विधिः प्रस्तुत शोध में आँकड़ों का विश्लेषण मात्रात्मक विधि द्वारा किया गया है।

सांख्यिकी विधिः प्रस्तुत शोध में परिकल्पना परीक्षण के लिए पियरसन सहसंबंध का प्रयोग किया गया है।

तालिका- 01

		शैक्षिक आकांक्षा	चिंता
शैक्षिक आकांक्षा	Pearson Correlation	1.000	-.825
	Sig.(2-tailed)	-	.000
	N	60	60
चिंता	Pearson Correlation	-.825	1.000
	Sig.(2-tailed)	.000	-
	N	60	60

प्रस्तुत विश्लेषण में शैक्षिक आकांक्षा एवं चिंता के बीच –.825 का सहसंबंध गुणाक है। अत: कहा जा सकता है कि चिंता एवं शैक्षिक आकांक्षा के बीच उच्च नकारात्मक सह–संबंध है। अत: वर्तमान शोध हेतु निर्धारित परिकल्पना असत्य सिद्व हुई कि छात्रों के शैक्षिक आकांक्षा एवं चिंता स्तर में कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है।

निष्कर्ष

चिंता का शैक्षिक आकांक्षा से नकारात्मक संबंध पाया गया है। अत: छात्रों की चिंता दूर कर उनकी शैक्षिक आकांक्षा स्तर को उन्नत किया जा सकता है। इस अंतर को काउसलिंग के माध्यम से कम किया जा सकता है और चिंता के नकारात्मक प्रभाव को कम कर शैक्षिक आकांक्षा को बढ़ाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. मंगल एवं मंगल (2014), व्यावहारिक विज्ञानों में अनुसंधान विधियाँ, नई दिल्ली : पी०एच० आई० लरनिंग।
2. सिंह अरूण कुमार (2010), न्यूरोमनोविज्ञान के मूलतत्व पटना: मोतीलाल बनारसी दास।
3. भारद्वाज, आर०के० एवं प्रभूदयाल (2019), माध्यमिक स्तर पर मुस्लिम समुदाय के छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक आकांक्षा का तुलनात्मक अध्ययन।
4. www.ignited.in.
5. www.hindustantimes.com.
6. IndianstreamsResearchJournal(July2014),www.resarchgate.net.

कोविड-19 महामारी के बाद आर्थिक सुधार में भारत की प्राथमिकताओं का अध्ययन

डॉ० रश्मि
असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग
रामेश्वर दास अग्रवाल कन्या महाविद्यालय
हाथरस।
डॉ० राजीव कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़।

सारांश

कोविड-19 महामारी से पहले ही खपत और निवेश की मांग में उल्लेखनीय कमी बनी हुई थी- कोविड-19 ने उन प्रवृत्तियों को और बढ़ा दिया। इसके बाद, भारत का आर्थिक पुनरूद्धार प्रत्यक्ष सरकारी राजकोषीय हस्तक्षेप द्वारा मांग सृजन पर निर्भर होगा। इसके लिए एक सात-सूत्रीय राजकोषीय प्रोत्साहन पथ की रूपरेखा तैयार की है जिसे अल्पवधि में लागू किया जाना चाहिए ताकि अर्थ व्यवस्था वापस अपनी पटरी पर आ सके।

भारत की अर्थ व्यवस्था वर्षों तक उच्च दर से विकास करने के बाद वित्त वर्ष 2017 और वित्त वर्ष 2020 के बीच वित्तीय क्षेत्र में कमजोरी के साथ उपभोग की वृद्धि में गिरावट देखी इससे स्पष्ट है कि केाविड-19 महामारी से पहले ही अर्थव्यवस्था अपने खराब दौर में थी। जी०डी०पी० ग्रोथ 8 तिमाहियों तक लगातार गिरी। मार्च 2018 में जी०टी०पी० 8.2प्रतिशत थी और मार्च 2020 में गिरकर 3.1प्रतिशत हो गयी। महामारी से पहले ही निजी उपभोग और निवेश की मांग में कमी वनी हुई थी केाविड 19 ने इन प्रवृत्तियों को और बढ़ा दिया। लेखा महा नियंत्रक के आंकड़ों के अनुसार 2019-20 में सकल कर राजस्व संग्रह बजट अनुमान का 81.6 प्रतिशत था जो 2000-01 के बाद सबसे कम था।

मैन्यूफैक्चरिंग को बढावा देने के लिए बार-बार प्रयास किए परन्तु प्रयास के बावजूद भी यह क्षेत्र बढने में किल रहा जिससे सेवाओं में तेजी आई (स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि हुई खर्च के साथ) आखिर कार, मांग की कमी ने सभी वर्गों को

प्रभावित किया, चाहे उनकी आर्थिक प्रकृति कुछ भी हो। एक बाहरी झटके के रूप में महामारी ने अंतत: अर्थव्यवस्था को अनुबन्धित कर दिया। इस संकट के असर को कम करने के लिए कई मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति उपाए किए। यह सत्य है कि हर संकट एक अवसर भी प्रदान करता है। भारत को अपनी गिरती अर्थ व्यवस्था की स्थिति को फिर से बेहतर बनाने के लिए यह आवश्यक होगा कि अर्थव्यवस्था के विकास के लिए विकास उन्मुख सुधारों को लागू करते समय असमानता को कम करके, ध्यान केन्द्रित किया जाए तथा सभी क्षेत्रों में राजकोषीय प्रोत्साहन नीति को क्रियान्वयन किया जाए ताकि वह वापस अपनी पटरी पर आ जाए। यद्यपि भारत के पास युवा आबादी जैसे महत्वपूर्ण संसाधन हैं फिर भी उसे भविष्य में तेज गति से तरक्की करने के लिए संरचनात्मक सुधारों को प्राथमिकता देनी होगी।

पिछले दो वर्षों के वैश्विक व्यापार तनाव और कोविड-19 महामारी के भारी झटके ने आत्म निर्भता को बढावा दिया। एक आत्मनिर्भर भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रचार करना एक आन्तरिक भविष्य की वैश्विक अर्थव्यस्था को मानता हैं हालॉकि उस प्रस्ताव में एक विरोधाभास है। यदि प्रत्येक देश कम आयात और अधिक निर्यात करने का प्रयास करता है, तो अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार सिकुड़ जायेगा। इसका मतलब है कि सभी प्रमुख निर्यातक देशों के निर्यात में कमी आई है। इसलिए गहन आत्म निरीक्षण की आवश्यकता है। यद्यपि कोविड-19 महामारी के कारण पिछले दो वर्ष वैश्विक, अर्थव्यवस्था के लिए बहुत कठिन रहे। संक्रमण की लहरों, आपूर्ति श्रंखला में रूकावटें और हाल ही में वैश्विक मुद्रास्फूीति ने विशेषतौर पर नीति निर्धारण के कार्य को चुनौती पूर्ण बना दिया है। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए तथा अर्थ व्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए इस प्रपत्र के माध्यम से सात सूत्रीय ब्लूप्रिन्ट तैयार किया है।

1. एक साल के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सार्वभौमिक बनाना

2017-18 में कुल घरेलू खपत के प्रतिशत के रूप में भोजन पर व्यय ग्रामीण क्षेत्रों में 33.1 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 22.4 प्रतिशत था। पहला राजकोषीय हस्तक्षेप अधिक से अधिक लोगों को भोजन उपलब्ध कराने में होना चाहिए। यह अन्य प्रकार की खपत के लिए पर्याप्त मात्रा में क्रय शक्ति मुक्त कर सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना के भीतर बड़ी असमानताओं के साथ, यह महामारी पुनर्वितरण उपायों के लिए एक अवसर हो सकता है। जैसा कि अमर्त्स सेन द्वारा तर्क दिया गया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) को सार्वभौमिक बनाना एक अच्छा प्रारंभिक बिंदु होगा।

भारतीय खाद्य निगम के आंकड़ों के अनुसार, सितंबर 2020 में केन्द्रीय पूल में चावल और गेहूं का कुल स्टॉक 70.03 मिलियन टन है। यदि स्टॉक में बिना पिसाई धान और मोटे अनाज को जोड़ा जाए, तो कुल खाद्यान्न केंद्रीय पूल में स्टॉक 81.11 मीट्रिक टन होगा। खाद्यान्न भंडार के इस उच्च स्तर को देखते हुए, पीडीएसव का अस्थायी सार्वभौमिकरण किया जा सकता है। छः महीने के लिए पीडीएस को सार्वभौतिक बनाने के लिए मोटे तौर पर 66 मीट्रिक टन खाद्यान्न की आवश्यकता है, और देश में वर्तमान में अधिक है।

मार्च 2020 के अंत तक, सरकार ने प्रधानमत्री गरीब कल्याण अन्न योजना (पीएमजीकेएवाई) की घोषणा की, जिसके तहत प्रति व्यक्ति अतिरिक्त 5 किलो अनाज और प्रति परिवार 1 किलो दाल तीन महीने के लिए मुफ्त में प्रदान की गई। इसका उद्देश्य अंत्योदय अन्न योजना राशन कार्ड के तहत 80 करोड़ व्यक्तियों को कवर करना था, जिन्हें आमतौर पर गरीबी रेखा के नीचे (बीपीएल) कार्ड के रूप में जाना जाता है। हालाँकि, वह अवधि जून में समाप्त हो गई है, और उसी तिमाही में लगभग 24 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद का स्फाया हो गया।

हालांकि इस योजना को नवंबर 2020 के अंत तक बढ़ा दिया गया है, लेकिन प्रतिबंध में बड़ी आबादी शामिल नहीं है, जबकि प्रभावित परिवारों की संख्या बड़ी होने की सम्भावना है। वर्तमान में उपयोग किए जा रहे जनसंख्या अनुमान पुराने हैं और बहिष्करण के अन्य कारण भी हैं जैसे आधार, क्षेत्रीय खा़द्य वितरण कोटा, और रसद से संबंधित मुद्दों सहित दस्तावेजों की कमी।

11,185.50 रूपये की मासिक प्रति व्यक्ति शुद्ध राष्ट्रीय आय वाले देश में अधिकांश आबादी को खाद्य सुरक्षा प्रदान की जानी है। भोजन पर व्यय किसी भी घर के प्रमुख खर्चों में से एक है। इसे कवर करते हुए पीडीएस के सार्वभौतिकरण के साथ अन्य खरीद के लिए पैसे मुक्त कर सकते हैं।

दूसरा कारण लक्ष्यीकरण लागत से सम्बन्धित है। लक्ष्यीकरण पर पैसा खर्च करने के बजाय, सार्वभौतिकरण उन लोगों के लिए पीडीएस के कवरेज को पर्याप्त रूप से बढ़ा सकता है। जिन्हीं इसकी तत्काल आवश्यकता है। यह माना जा सकता है कि जिनके पास वेतन संरक्षण है, उन्हें महामारी के समय में कुछ किलोग्राम अनाज के लिए कतार में लगने की परेशानी नहीं होगी। यूनिवर्सल पीडीएस सिस्टम में लीकेज भी कम होता है। तमिलनाडु, सार्वभौतिक पीडीएस के साथ, और छत्तीसगढ़, लगभग-सार्वभोमिकीकरण के साथ, पीडीएस में कम रिसाव वाले राज्यों में से हैं।

तीसरा, प्राथमिक वस्तुओं (मुख्य रूप से खाद्य) की कीमतों में वृद्धि को देखते हुए, सार्वभौमिक पीडीएस में कीमतों को नीचे रखने की क्षमता है[1], मंदी की स्थिति में, यह अगले छह महीने से एक साल के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सार्वभौमिक बनाने का एक अतिरिक्त लेकिन कम महत्वपूर्ण कारण नहीं है।

"एक राष्ट्र, एक राशन कार्ड" लॉन्च करने की सरकार की मंशा के साथ, यह उपभोक्ता मांग को पुनर्जीवित करने और अधिकांश आबादी के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक लंबा रास्ता तय कर सकता है।

2. शहरी क्षेत्रों में रोजगार गारंटी का विस्तार

लॉकडाउन के दौरान प्रवासी कामगारों के संकट के बाद अब ग्रोकस रिवर्स माइग्रेशन पर चला गया हैं श्रमिकों के अपने घरों से लौटने की खबरें हैं, जहां उन्हें लाभकारी रोजगार नहीं मिला। संयोग से, मनरेगा (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम) का उपयोग 2020-21 की पहली छमाही में 86 मिलियन से अधिक लोगों द्वारा किया जा चुका है। यह 2006 में शुरू होने के बाद से इस योजना का अब तक का सबसे अधिक उपयोग है, और रोजगार का ग्रामीण पारिस्थितिकी तंत्र बड़े पैमाने पर तनाव में है।

शहरी और ग्रामीण भारत के बीच श्रम की आवाजाही कभी भी एकरूप नहीं रही है- कुछ लंबी अवधि के लिए प्रवास करते हैं, जबकि कुछ अल्पावधि के लिए जीडीपी में तेज गिरावट को देखते हुए शहरी इलाकों में भी मौके कम होने की आशंका जताई जा रही है यह सबसे महत्वपूर्ण है कि इन परिपत्र प्रवासियों को शहरी रोजगार सेट में समाहित किया जाए। लेकिन जब नौकरियां आम तौर पर गायब हो रही हो तो समावेशन एक आसान काम नहीं हो सकता है। अतः अर्थव्यवस्था केा स्थिर करने के लए शहरी क्षेत्र में रोजगार गारंटी योजना का विस्तार आवश्यक है। आडिशा सरकार ने शहरी क्षेत्रों में रोजगार गारंटी योजना लाने का फैसला किया है। इस उद्देश्य के लिए राज्य को 2020 में लगभग 200 करोड रूप्ये खर्च करने की उम्मीद थी। झारखंड और हिमाचल प्रदेश ने भी शहरी बेरोजगारी से निपटने के लिए इसी रतह के शहरी कार्य कार्यक्रमों की घोषणा की है। हालांकि, इन राज्य कार्यक्रमों में आवंटन पर्याप्त नहीं है, और केंद्र सरकार का योगदान उनके कवरेज में काफी सुधार कर सकता है।

क्रय शक्ति को बढावा देने और इस तरह खपत की मांग के अलावा, इस योजना में शहरी मजदूरी बढाने और स्थिर करने की क्षमता है। यह अंतर-राज्य प्रवास को नियमित करके एक स्थिर राष्ट्रीय श्रम बाजार भी बना सकता है जो विभिन्न श्रम बाजारों में अधिशेष और कमी को लगातार संतुलित कर सकता है। इस योजना में पर्यावरण के अनुकूल हरित सार्वजनिक स्थान जैसी शहरी संपत्ति बनाने की क्षमता है और यह स्मार्ट शहरों जैसे मौजूदा केंद्र सरकार के प्रयासों को बढ़ा सकती है।

यह सच है कि इस योजना को हर जगह तुरंत शुरू नहीं किया जा सकता है। लेकिन अगर कभी इस उपाय को शुरू करने की सख्त जरूरत पड़ी है तो वह अभी है। अगले दो वर्षों में इसका

तेजी से विस्तार करने के इरादे से लगभग 10–15 गैर–मैट्रो शहरों को पायलट आधार पर तुरंत लक्षित किया जा सकता है।

3. प्रभावित आबादी को सीधे नकद हस्तांतरण

2020 की शुरूआत में, संसद में अनौपचारिक श्रमिकों का एक राष्ट्रीय डेटाबेस बनाने के लिए एक विधेयक पेश करते हुए, यह उल्लेख किया गया था कि देश के लगभग 90 प्रतिशत कार्यबल विभिन्न अनौपचारिक क्षेत्रों में हैं। 81 प्रतिशत कार्यबल पर संख्या का अनुमान लगाने वाले अन्य अनुमान हैं। यदि राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी डेटा का उपयोग किया जाता है, तो कार्यबल में अनौपचारिकता का 52.4 प्रतिशत प्रचलन है। विश्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार, 2019 में भरतीय कार्यबल का आकार 494,261,397 था, और इसका 52.4 प्रतिशत 258, 992, 972 होगा। इसलिए, एक रूढिवादी अनुमान में, लॉकडाउन ने अनौपचारिक क्षेत्र के करीब 26 करोड श्रमिकों को प्रभावित किया है।

अगस्त 2020 में, सेंटर ऑर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी ने वेतनभोगी लोगों के बीच संचयी 18.0 मिलियन नौकरी छूटने की सूचना दी। अप्रैल में, लगभग 40.3 करोडों लोगों का रोजगार प्रभावित हुआ है, जिनमें से 12.1 करोड़ ने अपनी नौकरी खो दी है। दरअसल, नौपचारिक श्रमिकों में तनाव अधिक है।

यह कहना बेनामी नहीं होगा कि अधिक डीबीटी की आवश्यकता है–अधिक लोगों को कवर करना। इससे पहले, अभिजीत बनर्जी और रथिन रॉय जैसे अर्थशास्त्रीयों ने इस तरह के हस्तांतरण के पक्ष में मजबूत तर्क देते हुए कहा कि इस असाधारण स्थिति से निपटने के लिए आय सहायता प्रदान करना और धन व्यवधान को रोकना आवश्यक है। महामारी ने न केवल गरीबों को, बल्कि श्रमिकों के एक बड़े वर्ग को भी प्रभावित किया है, जिनके पास किसी भी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा नहीं है। हालांकि यह सच है कि प्रभावित आबादी की पहचान करना एक मुश्किल काम है, आधार का उपयोग करना और केंद्र और राज्य सरकारों के बीच समन्वित प्रयास असंभव नहीं होगा। डीबीटी के माध्यम से छह महीने के लिए अस्थायी आय सहायता अर्थव्यवस्था में खपत और कुल मांग को और बढ़ा सकती है।

भारत में लगभग एक तिहाई जनसंख्या समय–समय पर किसी न किसी प्रकार के कार्य में लगी रहती हैं इसका लगभग मतलब यह है कि शेष दो–तिहाई इन श्रमिकों पर निर्भर हैं। यदि गंभीर रूप से प्रभावित अनौपचारिक श्रमिकों का 50 प्रतिशत रूढिवादी अनुमान लगाया जाता है, तब भी 13 करोड श्रमिकों और अन्य 26 करोड़ आश्रितों–कुल 39 करोड़ लोगों को संकट में माना जाएगा।

सरकार के 1.7 लाख करोड रूपये के राहत पैकेज में प्रधान मंत्री गरीब कल्याण योजना (पीएमजीकेवाई) के तहत विभिन्न श्रेणियों में 80 करोड आबादी को प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (डीबीटी) शामिल है। हालॉकि, इस राशि में से एनआईर 73,000 करोड वृद्धिशील राशि थी, और शेष राशि पहले ही वर्ष में पहले ही बजट कर दी गई थी एसबीआई इकोवर्प रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया है कि लॉकडाउन के दौरान भारत के 37.3 करोड श्रमिकों (सव-रोजगार, आकस्मिक और नियमित) की कुल आय हानि लगभग 4 करोड रूपये हैं। डीबीटी के लिए निर्धारित राशि अपर्याप्त है। इसके अलावा, कुछ अनुमानों ने देश के कुल प्रवासी कामगारों के लगभग एक-तिहाई तक राहत उपायों की पहुंच को बढ़ा दिया है।

4. चयनित क्षेत्रों में उत्पादकों को इनपुट टैक्स में राहत प्रदान करना

जुलाई 2020 के लिए औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आईआईपी) और उपयोग-आधारित सूचकांक के त्वरित अनुमान इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि देश का औद्योगिक उत्पादन संकट में है। मई-जुलाई की अवधि में लगातार सकारात्मक वृद्धि दर दिखाने वाला एकमात्र बड़ा विनिर्माण खण्ड फार्मास्यूटिकल्स है। यह अपेक्षित था, तंबाकू एकमात्र अन्य क्षेत्र है जो जुलाई 2020 (6.1 प्रतिशत) के करीब, ज्यादातर अभी भी जुलाई के महीने में दोहरे अंकों में विकास संकुचन दिखा रहे हैं।

एन०ई०सी०- कहीं और वर्गीकृत नहीं

मई 20, जून 20 और जुलाई 20 के आंकड़े अनंतिम हैं।

समस्या यह है कि आईआईपी में फार्मा का वेटेज करीब 5 फीसदी और तुबाकू का 0.8 फीसदी है। इन दोनों क्षेत्रों से समग्र औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि की अपेक्षा करना लगभग 6 लोगों द्वारा 94 अन्य को आकर्षित करने की अपेक्षा करने जैसा है। यदि समग्र उत्पादन में सुधार करना है तो अन्य क्षेत्रों को जल्द से जल्द पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। उद्योग जगत के लिए इस कठिन समय में, कॉर्पोरेट कर रियायतों के लिए सामान्य कोलाहल है। इस बार यह काम नहीं करेगा। ध्यान देने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि संकुचन मार्च 2020 में शुरू हो गया है- जो भारतीय औद्योगिक उत्पादन में पहले से मौजूद संकट को दर्शाता है। महामारी ने इसे कई बार बढ़ाया। आने वाले दिनों में बेरोजगारी के प्रतिकूल परिणाम भी बढ़ने की संभावना है।

इसलिए, उद्योग में इस मंदी की प्रवृत्ति के माध्यम से संभावित तरीका इनपुट टैक्स रियायतें प्रदान करना है। कुछ समय के लिए इनपुट करों को कम करना या समाप्त (जैसे शुरू में एक वर्ष के लिए) एक प्रारंभिक बिंदु हो सकता है। यह कभी समझ में आता है कि सरकार सभी क्षेत्रों को इनपुट सब्सिडी

प्रदान करने की स्थिति में नहीं है। प्रक्रिया वेटेज के मामले में शीर्ष पांच विनिर्माण के साथ शुरू हो सकती है। धातु, तेल, रसायन, प्रसंस्कृत खाद्य और ऑटोमोबाइल फार्मा को फिलहाल इस योजना से बाहर रखा जा सकता है। एक बार जब कुछ प्रारंभिक लाभार्थी क्षेत्र स्वयं को पुनर्जीवित कर लेते हैं, तो उन्हें बाहर निकाला जा सकता है और अन्य द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है उनमें से प्रमुख हैं मशीनरी और उपकरण, कपड़ा विद्युत उपकरण डीबीटी और शहरी रोजगार गारंटी जैसे भाग उत्प्रेरण उपायों के अलावा एक प्रभावी आपूर्ति-पक्ष वृद्धि हो सकती है। कुल मिलाकर यह निवेश की मांग के एक अच्छे हिस्से को पुनर्जीवित कर सकता है।

5. भौतिक और सामाजिक बुनियादी ढांचे में सार्वजनिक निवेश

जब अर्थव्यवस्था समग्र मांग की कमी से पीड़ित है, तो यह उम्मीद करना व्यर्थ होगा कि निजी निवेश बचाव में आएगा। इसलिए, सार्वजनिक निवेश-कम से कम कुछ समय के लिए- निजी निवेश में भीड़ के लिए आवश्यक है। भारत में बुनियादी सुविधाओं की कमी है जिसे अक्सर उद्योग, विशेष रूप से विनिर्माण की किलता और वांछित स्तर तक पहुंचने के पीछे प्रमुख कारणों में से एक के रूप में उद्धत किया गया है।

बड़ी मात्रा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित करने में असमर्थता में बुनियादी ढांचा भी एक प्रमुख मुद्धा रहा है। इस संकट के समय ने उस लंबे समय से चली आ रही खाई को पाटने का अवसर पैदा किया हो सकता है। एक या दो साल के लिए बुनियारी ढांचे पर आक्रामक सार्वजनिक निवेश अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के प्रयासों में मदद कर सकता है। चीन छोड़कर जा रही मैन्युफैक्चरिंग कंपनियाँ भारत की ओर आकर्षित होगी।एक बढते बुनियादी ढांचे के माहौल में उस प्रयास को जोडने की क्षमता है। इसके अतिरिक्त, भविष्य के निर्यात पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। बुनियादी ढांचे के निर्माण से तत्काल रोजगार और क्रय शक्ति पैदा होती है, जिससे सिस्टम में मांग बढ़ती है। गुणक प्रभाव के माध्यम से, यह भविष्य के निवेश चक्र में भी शामिल हो सकता है। लघु से मध्यम अवधि में, भारत को अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए सार्वजनिक निवेश को बढावा देने के लिए ऋण वित्तपोषण पर निर्भर रहना पड़ता है। सीमित राजकोषीय स्थन भारत को कर-वित्तपोषित मॉडल के लिए जाने की अनुमति नहीं देगा, जो पहले से ही ध्वजांकित मांग पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। बुनियादी ढांचे पर हाल ही में आईएमएफ की एक रिपोर्ट में इसका उल्लेख किया गया है। इन्फ्रास्ट्रक्चर निवेश का रूझान और प्रकृति तय करेगी कि भारतीय अर्थव्यवस्था कितनी तेजी से खुद को पुनर्जीवित कर सकती है। केन्द्र सरकार ने दिसंबर 2019 में इन्फ्रास्ट्रक्चर विजन 2025 पर आधारित 1.5 ट्रिलियन डॉलर की नेशनल इन्फ्रास्ट्रक्चर पाइपलाइन का अनावरण करते हुए

महामारी से पहले ही इसे पहचान लिया था। स्वास्थ्य इन्फ्रा, शहरी नियोजन, सड़कों, ग्रामीण इन्फ्रा और डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर को मजबूत करना और बढ़ाना होगा। लंबे समय में भी प्रमुख चालक तेजी से पुनरूद्धार के लिए बुनियादी ढांचे के इन सभी क्षेत्रों में तत्काल सार्वजनिक निवेश की आवश्यकता होती है।

6. एफआरबीएम (राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजटीक प्रबंधन) को दो साल के लिए निलंबित करें।

इस समय, स्तरित निर्णय लेना और उन निर्णयों का समय पर कार्यान्वयन अर्थव्यवस्था को पुनरूद्धार के रास्ते पर लाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं। अर्थव्यवस्था को राजकोषीय प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए एआरबीएम (राजकोषीय उत्तरदायित्व और बजटीय प्रबंधन) अधिनियम को दो वर्षों के लिए स्थगित करने की आवश्यकता है।

सरकार ने पहले ही 2019-20 और 2020-21 के बजट में असाधारण परिस्थितियों में एफ०आर०बी०एम० अधिनियम में निहित चलीलेपन का उपयोग किया है, जिसमें लक्षित बजट घाटा एफ०आर०बी०एम० के अनुरूप अब किसी भी प्रोत्साहन के लिए लगभग कोई वित्तीय स्थान नहीं बचा है। लेकिन एफ०आर०बी०एम० अधिनियम के निलंबन का मामला हमेशा बना रहता है, जैसा कि 2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान किया गया था। नवीनतम अनुमान बताते हैं कि भारत पहले ही 2019-20 में राजकोषीय घाटे के लक्ष्य को पार कर चुका है। यह वर्तमान में सकल घरेलू उत्पाद का 4.6 प्रतिशत अनुमानित है, जो सकल घरेलू उत्पाद के 3.8 प्रतिशत के अनिवार्य लक्ष्य से काफी अधिक है। इसलिए, एफ०आर०बी०एम० के कारण प्रोत्साहन कार्यक्रम न शुरू कराने का आर्थिक अर्थ नहीं है। वर्तमान में विकास संबंधी चिंताएं स्पष्ट रूप से भविष्य के मैक्रो स्थिरता जोखिमों के बारे में चिंताओं से अधिक है। एफ०आर०बी०एम० को दो साल के लिए निलंबित करना किसी भी राजकोषीय पुनरूद्धार के प्रयास के वित्तपोषण के लिए प्रारंभिक कदम होना चाहिए।

7. केंद्रीय राजकोषीय घाटे का मुद्रीकरण

सरकार के आर्थिक पैकेज का राजकोषीय तत्व घोषित आंकड़े का एक अंश निकला। बैंकों और क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों जैसी विभिन्न संस्थाओं द्वारा वास्तविक राजकोषीय प्रोत्साहन का अनुमान आर्थिक पैकेज के आकार को जीडीपी के 0.8 प्रतिशत से 1.3 प्रतिशत के बीच दर्शाता है। एसबीआई रिसर्च ने पैकेज की प्रत्यक्ष वित्तीय लागत लगभग 2 लाख करोड रूपये या सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 01 प्रतिशत रखी है। अप्रैल 2020 में वापस, पूर्व सीईए अरविंद सुब्रमण्यम, और जॉन हॉपकिंस

विश्वविद्यालय के प्रोफेसर देवेश कपूर ने आईएनआर 10 लाख करोड़, या सकल घरेलू उत्पाद के 5 प्रतिशत की प्रत्यक्ष वित्तीय प्रोत्साहन के लिए तर्क दिया है। बाद में फिक्की के महानिदेशक द्वारा इसका समर्थन किया गया और व्यापार समाचार पत्र मिंट ने अपने संपादकीय में उस प्रस्ताव को दोहराया। प्रत्यक्ष राजकोषीय प्रोत्साहन के एनआईआर 10 लाख करोड़ के आंकड़े को बाद में कई अर्थशास्त्रीय और सार्वजनिक नीति निर्माताओं से मंजूरी मिली। यदि मार्च और मई के प्रोत्साहन के लिए सरकार के लिए एसबीआई की राजकोषीय लागत का अनुमान 2 लाख करोड को घोषित प्रोत्साहन के वास्तविक अनुमान माना जाता हे तो आईएनआर 8 लाख करोड अधिक प्रावधान करने की आवश्यकता है। मार्च में घोषित राजकोषीय खर्च के उपायों के बाद (वास्तविक लागत लगभग 1 लाख करोड रूपये होने का अनुमान है), केन्द्र सरकार ने मई की शुरूआत में 7.8 लाख करोड रूप्ये के बजट से अपनी उधार आवश्यकता को संशोधित कर 12 लाख करोड रूपये कर दिया। यह विश्लेषण आगे मानता है कि उधार लेने की यह बड़ी हुई आवश्यकता, ज्यादातर खुले बाजार से, लगभग 1 लाख करोड़ रूपये के मार्च प्रोत्साहन का ध्यान रखेगी। इसका मतलब है कि मौजूदा मई प्रोत्साहन से आईएनआर 1 लाख करोड़ अधिक प्रस्तावित अतिरिक्त आईएनआर 8 लाख करोड के साथ वित्त पोषित करने की आवश्यकता है। इस अतिरिक्त 9 लाख करोड रूपये जुटाने के लिए तीन बुनियादी तरीके अपनाए जा सकते हैं। हालांकि, इससे पहले, दुनिया की प्रमुख अर्थव्यस्थाओं में ब्याज दर की दिशा पर एक नजर डालना मददगार होगा। जापान और यूरोपीय संघ को छोड़कर (दोनों ने बहुत पहले ब्याज दर की गतिशीलता खो दी थी), अन्य सभी अर्थव्यवस्थाओं ने कोविड-19 प्रसार के बीच अपनी दरों में काफी कमी की है। अधिकांश विकसित देशों और संभावित अंतराष्ट्रीय ऋण बाजारों के लिए, दरें आम तौर पर लगभग शून्य स्तर पर मँडरा रही हैं। इसलिए सरकार द्वारा इन ऋण बाजारों को टैप करने का प्रयास किया जा सकता है, अनिवासी भारतीयों को भी "लोटिंग दरों पर कोविड बांड की पेशकश की जा सकती है इस धारणा के साथ कि दरें कुछ समय के लिए निचले स्तर पर होंगी। विदेशी मुद्रा बाजार में रूपये का विगडना वास्तव में एक जोखिम है- लेकिन इस समय एक जोखिम लेने लायक है। घरेलू बाजार में, हालांकि, वित्त जुटाने की एक बडी संभावना है क्योंकि कई बडे फंड, संस्थागत और उच्च निर्वल मूल्य वाले व्यक्ति, अपेक्षाकृत कम व्याज दर पर भी एक सुनिश्चित रिटर्न (भारत सरकार द्वारा गारंटीकृत) कोविड बांड का विकल्प चुन सकते हैं। विदेशी ऋण बाजार और कोविड बांड की इन तीन ऋणियों में से प्रत्येक में आईएनआर-2 ट्रिलियन जुटाने का प्रयास एक प्रशंसनीय विकल्प है। शेष आईएनआर 3 ट्रिलियन का मुद्रीकरण किया जा सकता है - आरबीआई से रेपों दर से कम (आदर्श रूप से लगभग 3.5 प्रतिशत) और लंबी अवधि (कम से कम 10 वर्ष की अवधि) के साथ एक निश्चित दर पर उधार लिया गया। 1997 तक, सरकारी घाटा बाजार दर से काफी कम दर पर स्वत: मुद्रीकृत हो जाता था। अब समय आ गया है कि इस से कुछ सीखा जाए, भले ही यह अस्थायी रूप से ही क्यों न हो। यदि अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करना है, तो इस परिमाण का एक

प्रोत्साहन आवश्यक है। एफआरबीएम-अनिवार्य लक्ष्यों को पालन करना अब अर्थव्यवस्था को बुरी तरह से नुकसान पहुंचा सकता है, और फिर कम राजकोषीय घाटा अगले साल किसी की मदद करने में सक्षम नहीं होगा। अन्त में सक्रिय उपायों की वदौलत अर्थव्यवस्था के वित्तीय वर्ष 2022 में होने वाले मजबूत वुनियाद प्रभावों के साथ पटरी पर लौटने की उम्मीद है।

सन्दर्भ सूची

1. कबीर अग्रवाल, "कि भारत को पीडीएस को सार्वभौमिक बनाने की आवश्यकता है और वहन कर सकता है, द वायर, 18 अप्रैल, 2020
2. कौशिक बसु, "इंडिया एंड द मिस्ट्रस्ट इकोनॉमी", द न्यूयॉर्क टाइम्स, 6 नवंबर, 2019
3. "भारत का राजकोषीय घाटा वित वर्ष 2020 में 4.6 प्रतिशत तक पहुंचने का लक्ष्य तोड़ता है", ब्लयूमबर्गक्विंट, 29 मई, 2020
4. हरीश दामोदरन, "यह राजनीतिक और साथ ही व्यापक आर्थिक स्थिरता के समय में भारत की पहली मंदी है", द इंडियन एक्सप्रेस, 30 नवंबर 2019
5. "भारतीय अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करना क्या बुनियादी ढांचे की कुंजी है", ईटी सरकार, 12 जुलाई 2020
6. सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार, 29 मई 2020, 27 नवम्बर 2020
7. अभिजीत मुखोपाध्याय, "आत्मानबीर पैकेज डूबती अर्थव्यवस्था के लिए एक कमजोर राजकोषीय पुआल", ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन, 29 मई, 2020
8. मनमोहन सिंह, "भारत की आर्थिक अस्वस्थता का फव्वारा", द हिंदू, 18 नवंबर 2019

मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नारी पात्रों की दशा और दिशा : भारतीय परिप्रेक्ष्य में

सोनी कुमारी
स्नातकोत्तर हिन्दी–विभाग
बि० बि० म० कोयलांचल विश्वविद्यालय धनबाद

समकालीन हिन्दी उपन्यासों मे कथ्यगत सवेदना, रूपबंध और दृष्टि को लेकर गुणात्मक परिर्वतन परिलक्षित होता आ रहा है। 20 शताब्दी के आरंभ से ही उपन्यास साहित्य समाज के लिए गतिशीलता का विषय रहा है अथवा समग्र परिवेश में ैल कर देशकाल की प्रमाणिक चेतना से समाज की समस्याओं, प्रश्नाकुलताओं, चुनौतियों, अंतविरोधों, विसंगतियों, आधुनिक समाज की जटिलताओं, यत्रंणाओं को व्यक्त करता आ रहा है। आधुनिक परिपेक्ष्य में 'उपन्यास' मानव जीवन के लिए सिर्फ कलात्मक अन्तभीवित अन्तयात्रा का साधन मात्र नही है बल्कि मानव जीवन का परिचायक भी है। अत: साहित्यकार भी यही चाहता है कि जो भी विषय वस्तु साहित्य सृजन के माध्यम से समाज में प्रवेश हो वह समाज की वास्तविक सच्चाई, कल्पना एवं यर्थाथ को सजोते हुए नया युग चेतना से परिचित करवाये।

स्त्री जीवन की समस्याओं को सामान्य भुमि का स्पर्श कराते हुए प्रत्येक उपन्यास लेखिकाओं की अपनी विशिष्ट अनुभव संसार रहा है, जिसे उन्होनें अपनी कृतियो में अभिव्यक्त किया है। उपन्यासकार का यह कलात्मक अभिव्यक्ति उसे समाज में विशिष्ट बनाती है। नर्या पीढ़ी की तमाम हिन्दी लेखिकाओं की चिंता के केन्द्र मे वर्तमान बदलते समाज में स्त्री की समस्या व दशा का जटिल प्रश्न विद्यमान है। विवाह, प्रेम, यौनशुचिता परिवार, बच्चे, आर्थिक आत्मनिभरता, निर्णय लेने की स्वधीनता आदि से संबंधित तमाम प्रश्न समाज और साहित्य दोनों ही जगह पर स्त्री विमर्श की दशा और दिशा को प्रस्तुत करता है। जुलिया क्रिस्टीवा के वाक्य में "पितृसतात्मक भासिक संरचना में स्त्रीत्व ही वह सब कुछ है जिसे दबाया गया है। स्त्रीत्व को उभारना पित्सत्तात्मक भासिक संरचना का बदलाव और पुनराविस्कार ही साहित्यिक क्षेत्र में स्त्री विमर्श का मुख्य लक्ष्य है।"

हिन्दी उपन्यास साहित्य में नारी के दशा और दिशा पर चिन्तन प्रस्तुत करने में महिला लेखिकाओं की भूमिका नि:संदेह सराहनीय है। 'प्रभा खेतना' 'मृदुला गर्ग' 'मैत्रेयी पुस्पा' 'कृष्णा सोबली' 'गीतांजली श्री' आदि लेखिकाओं ने नारी की समस्याओं से जुड़े विभिन्न मुददों को उठाया है। महिला उपन्याकारों ने जीवन के विविध पक्षों को विषय बनातें हुए स्त्री के लिए न केवल संघर्ष किया बल्कि उसके लिए

एक तार्किक आधार भी निर्मित किया। मृदुला जी भी इसी कोटी में आती है जिन्होनें अपने उपन्यासों के माध्यम से कथ्य और शिल्प का नया कलेवर प्रस्तुत किया। स्त्री जीवन की त्रासदी और उसके मुक्ति की विराट आकांक्षा इनके रचनात्मक सरोकार की केन्द्रीय बिन्दु है। उनका उपन्यास 'उसके हिस्से की घुप' 'वंशज' 'अनिव्य' 'कठगुलाव' 'चित्तकोबरा' 'मै और मैं' 'मिलजुलमन' आदि उपन्यासों में स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं व नितान्त बदलती हुई स्त्री तस्वीर को हतारे सम्मुख रखा गया है। उपन्यासकार के रूप मे मृदुला जी की विलक्षण प्रतिभा विश्व मानवता का परिचायक है। समाज में व्याप्त कुरूतियों स्त्री के प्रति पाशवित बतवि और अहमन्य तावादी संस्कार बोध के विरूध स्त्री की निजता की रक्षा करना अपना महत्वपूर्ण धर्म मानती है। उनके उपन्यास के स्त्री पात्र ईमानदार, निर्भक, विवेकी, संवेदनशील जीवन के प्रति परिपक्व और संतुलित दृष्टिकोण रखने वाली है। मृदुला जी का प्रथम उपन्यास 'उनके हिस्से की धुप' नारी जीवन की व्यापकता का परिचायक है। नैतिक- अनैतिक प्रश्नों को तिलांजलि देकर नर-नारी के यौन सम्बन्धनों पर लिखी गथा यह उपन्यास स्त्री के स्वच्छन्द और उनमुक्त विचार को प्रस्तुत करता है। उपन्यास की नायिका मनिषा दाम्पत्य तथा दाम्पथ्येतर सम्बंध से संतुष्ट होन के बजाय दार्शनिक बनना पसंद करती है। प्रेम को जीवन का लक्ष्य माननेवाली मनिषा अंत में इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि प्रेम जीवन का लक्ष्य नहीं कर्म है, साध्य नही साधना है। वह स्व विश्लेषण करते हुए अपने जीवन की सार्थकता अपने भीतर खोजती है। परम्परा और नैतिकता के प्रति किए गए साहसपूर्ण विद्रोह स्त्री के स्वतत्रता का पक्षधर है। यही इस उपन्यास का मूल बिन्दु है।

मृदुला जी को उपन्यास विद्या की विस्तृतता ज्यादा आकर्षित करता रहा है। वह स्वयं कहती है "उपन्यास एक शहर की तरह होता है जिसके विस्तार से लेखक उसी तरह खेल खेल सकता है जैसे ईश्वर सृष्टि से खेलता है।" समाज के विस्तृत विवेचना व यथार्थ विषयवस्तु से जुड़ा उनका उपन्यास आज की नारी को सहज मानवीय रूप मे चित्रित करता है जहाँ स्त्री अपने अस्तित्वों स्वतंत्र रूप से दृढ़तापूर्वक स्वीकार करती दिखाई पड़ती है। उनकी दूसरा उपन्यास "वंशज" पितृसत्ता समाज के अमानवीय स्वरूप को समाज के समुख प्रस्तुत करता है। क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज में सामाजिक शोषण का सबसे अधिक शिकार स्त्री होती है चाहे वह पुत्री के रूप में हो या पत्नी के रूप में। स्त्री को अपनी अहमियता को समझाते हुए जब मृदुला गर्ग अपने उपन्यास वंशज में कहती है "जब तक औरत यह समझती रहेगी कि मर्द ही असल कमाऊ होता है, उसकी कमाई को अनदेखा किया जाता रहेगा।" इस उपन्यास के रचना के पीछे मृदुला जी का मुख्य मुद्दा स्त्री को वो अधिकार दिलवाना था, जो पुरूष को प्राप्त थे, पर स्त्री को नहीं।

मृदुला जी की विशेषता यह रही है कि समाज की भीतरी बारीक परतो को वे एक ही उपन्यास में नही उभारती वरन वह तो प्रत्येक उपन्यास के साथ कदम दर कदम चलकर पाठको को रोमांचित करती दिखाई पड़ती हैं। उनका उपन्यास 'कठगुलाब' अहम सवाल के साथ समाज से सरोकार करता

दिखाई पड़ता है। निजता का बोध स्त्री जीवन के परिपक्ता का परिचायक है किन्तु सहचर पुरूष के अमानवीय व्यवहार ने कदम कदम पर स्त्री को छला। स्मिा, मारियान, नर्मदा, असीमा सभी स्त्री पात्र इस उपन्यास में तृप्त इच्छाओं की पूर्ति की कामना करते हुए पुरूष से अलग रहकर जीवन जीने की आकांक्षा रखती हैं। पुरूष द्वारा प्रवांचित व प्रवचना द्वारा शोषित पीड़ित, सतायी गई स्त्री आर्थिक स्वतंत्रता की खोज स्वयं करती दिखाई पड़ती है। यह उपन्यास नारी विद्रोह का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण प्रस्तुत करता है। आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता आने पर नर्मदा के तेवर इस प्रकार अपने के प्रति व्यक्त होता है– "फिर कभी इस घर में आने की हिम्मत की तो टॉगे तोड़ के सड़क पर फेंक दूगी। भइए अपनी बीवी के पल्लु में जा के सो। मैं तेरी रखैल ना थी तू मेरी रखैल था।" लेखिका ने संस्कारों और प्रकृति में आ रही तब्दीलियों और स्त्री–पुरूषों के सम्बंधों में आ रहे बदलाव का चित्रण कलात्मक रूप से कठगुलाब उपन्यास में किया है।

"मैं और मैं" की नायिका माधवी समकालीन कथा परिदृश्य मे उत्तर आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करने वाली स्त्री के रूप में चित्रित हुई है। उसका संघर्ष अपने स्वं अस्तित्व के लिए परिवार से न हो कर परिवार से बाहर पुरूषसत्तात्मक समाज में स्त्री के गढ़े हुए स्वरूप से है। पुरूषसत्तात्मक समाज मे पुरूष की वास्तविकता जान लेने पर भी स्त्री स्वयं को इस्तेमाल होने देती है इसका जीता जागता रूप उपन्यास का पात्र "माधवी" है। माधवी की द्वन्दात्मक स्थिति गहरी संलग्नता के साथ मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में उद्धघटित हुआ हैं। समाज एवं परिवार के दायित्वों को निभाती नारी स्वावलम्बी होकर भी कार्यस्थल पर शोषण की शिकार होती है। वह स्वावलम्बी होते हुए भी अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष करती है। क्योंकि परिवार की सत्ता को सुरक्षित रखने की दायित्वबोध के तले दबी माधवी अपनी नियति मानती है।

"मिलजुलमन" मृदुला गर्ग का आत्मकथात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखिका ने नवस्वतंत्रता काल में स्त्रियों की आत्मनिर्भरता, उनकी नियती के प्रश्न को स्वर दिया है। उपन्यास के पात्र गुलमोहर के द्वारा ऐसी स्त्रियों की संवेदनशीलता के प्रश्न को उठाया गया है जिनका बाह्य स्वरूप आडम्बरपूर्ण बनावटी है लेकिन भीतर से वह त्रासदी की परिचायिका।

मृदुला जी की हर रचना किसी न किसी सत्य को सामने लाती है। वह स्त्री और पुरूष के सम्बंधों को सुदरता एवं चिर स्थायी रूप में समाज के समुख प्रस्तुत करती है। वर्तमान विकाशील भारत में ग्लोबलाइजेशन संचार विस्तार और बाजारवादी व्यवस्था ने मानव को उपभोक्ता बना दिया और इस सब के बीच स्त्री को सिर्फ उपभोग की वस्तु समझा जाने लगा था। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री–विमर्श, स्त्री आन्दोलन, स्त्री सशक्तिकरण जैसे असंख्य शब्दों ने अपनी जगह तो बना ली परन्तु स्त्री का मूल्यबोध उसकी संवेदना, उसका कला रूप, हाशिए की और धकेला जाने लगा था। भारत में ही नहीं अपुति

सम्पूर्ण संसार में स्त्री केन्द्रित समस्यायें, विकाश, सुधार तथा उनकी समान भागीदारी का ज्वलंत प्रश्नों को उपन्यास के माध्यम से चित्रित करती है। मृदुला जी नारी को मनुष्य के रूप में देखते हुए स्त्री चेतना को नई छवि को प्रस्तुत करते हुए उसके संस्कारों के आधार पर व्याख्यित करती है। कठगुलाब उपन्यास को असीमा का चरित्र भी इसी परिपाटी पर व्यंजित हुआ हैं। पुरूष विरोध असीमा के जीवन का एक मात्र उद्देश्य है। पुरूष विरोधी मानसिकता के पीछे उसके पिता द्वारा माँ के प्रति किया गया शोषण है। जिसके कारण उसे पुरूषों से चिढ़ है। स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार और शोषण को देखकर तिलमिला उठती हैं। इस तरह मृदुला गर्ग के सम्पूर्ण स्त्री पात्र सकारत्मक संघर्ष के बाद विकासोन्मुख आमूल-चुल परिर्वतन के लिए जागरूक है।

निष्कर्ष: निष्कष्त: मृदुला जी स्त्री पात्रों के माध्यम से भारतीय मान्यताओं और परंपराओं से उपजे संस्थानों को समाप्त करने की कोशिश करती है। चित्तकोबरा की मनु हो या उसके हिस्से की धूप की मनीषा या मै और मैं की माधवी ये सभी कथा के सशक्त पात्र है कुल मिलाकर लेखिका के उपन्यास के स्त्री पात्र अपनी जीवंतता के कारण अपना मार्ग स्वयं बनाती है अथवा आधुनिक नारी की यथस्थिति को व्यक्त करने में प्रयत्नशील है।

सन्दर्भ सूची

1. समाज शास्त्र, कंचनलता सब्बरबाल पृष्ठ 258
2. हिन्दी उपन्यास संबंधों के विविध आयाम, पृष्ठ 70, श्रवण कुमार मीण,
3. नवले डॉ० रमा, "मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी", विकाश प्रकाशन कानपुर।
4. डॉ० स्नेहलता, "समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री -विमर्श", राज पब्लिकेशन, नई दिल्ली
5. जैने रविन्द्र कुमार, "उपन्यास: सिद्धांत और संरचना नेशनल पब्लिशिंग हाउस", नई दिल्ली

निराला के गद्य साहित्य की भाषा

डॉ० अरुण कुमार मिश्र
वरिष्ठ सहायक प्रोफ़ेसर, हिन्दी
एम.डी.पी.जी. कॉलेज, प्रतापगढ़
प्रो. राजेंद्र सिंह उर्फ़ रज्जू भय्या विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध लेख में निराला के काव्यात्मक दुनिया से परे हटकर उनके गद्य संसार में जो कुछ भी सृजित किया है, उसकी भाषा का अध्ययन और विश्लेषण करके भाषा के मूल रूप की तलाश करनी है। गद्य के क्षेत्र में निराला ने कहानी, उपन्यास, निबंध और संस्मरण लिखे हैं। उनका गद्य भी उनकी कविता की तरह क्रांतिकारी चेतना लिए है।

सन्दर्भ : 17

निराला ने आमजन के सरोकारों को सहेजने के लिए भाषा को लालित्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्त्रियों के दु:खी जीवन पर अनेक कहानियाँ लिखी। जातिप्रथा ऊँच-नीच का भेदभाव, विधवाओं के प्रति कटु व्यवहार, पुरुषों का अहंकार, भारतीय परिवार में घुटती हुई नारी का चित्रण इन कहानियों में है। 'देवी' और 'चतुरी चमार' कहानियाँ जहाँ एक ओर दलितों का आख्यान देती हैं, वहीं दूसरी ओर अवध के किसान आंदोलन से प्रभावित है। इनमें परिवेश और पात्र अपने यथार्थ रूप में लाकर रख दिए गए है। पात्रों में प्रमुख पात्र-निराला स्वयं दिखाई पड़ते है, इसलिए ये कहानी के साथ-साथ रेखाचित्र और संस्मरण भी बन पड़े है। निराला के गद्य में एक ओर छायावादी रोमांटिक भाव है, तो दूसरी तरफ प्रगतिवादी चेतना के यथार्थवादी प्रवृत्ति का संसार भी है, तो प्रयोगशील चेतना का विकास भी है। **फ्रेचेस्का आर्सिनी** ने इसी को दृष्टि में रखकर लिखा है- "'छायावाद' के सबसे अधिक प्रयोगात्मक और विस्तृत कवि और मौलिक लेखाचित्रों, कहानियों तथा लघु उपन्यासों के लेखक 'निराला' को अब इस शताब्दी के सबसे अग्रणी हिंदी साहित्यकारों में गिना जाता है।"[1]

जहाँ शुक्ल जी ने निबंध को गद्य की कसौटी कहा है। वही निराला ने गद्य को जीवन के संग्राम की भाषा कहा। उन्होंने जिस प्रकार काव्य में मुक्त छन्दों का प्रयोग किया, उसी प्रकार अपने कथा साहित्य में भी नवीन भाषाओं का प्रयोग किया। उन्होंने कथा साहित्य में संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दों का

भी प्रयोग किया और आम बोलचाल भाषा का भी। निराला का पूरा कथा-साहित्य लगभग अपने समय के समसामयिक घटना एवं समाज में फैली विसंगतियाँ, रूढ़ियाँ जैसी समस्याओं की ओर इशारा करता है। निराला ने जिस तरह कविता के क्षेत्र में 'बादल राग', 'तोड़ती पत्थर', 'कुकुरमुत्ता' में क्रांति के प्रति उद्घोष और सामाजिक व्यवस्था के प्रति तीव्र विद्रोह के लिए अपने काव्य में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग किया है, उसी तरह कथा साहित्य में भी उनका लक्ष्य समाज से ऊँच-नीच और भेदभावी व्यवस्था का खात्मा करना था। वो जितना ही जाति, धर्म, वर्ण व्यवस्था के घोर विरोधी थे, उतने ही मानवीय करुणा से ओत-प्रोत भी। निराला छायावाद के उत्तर में प्रगतिशील चेतना से प्रभावित थे। परन्तु अपने ऊपर प्रगतिवाद को हावी नहीं होने दिया। समाज में दबे-कुचले, शोषित जनों की मुक्ति के लिए पूंजीपतियों, जमींदारों एवं सत्ताधारियों के विरोधी थे। ऐसे ही सामाजिक समस्याओं और विसंगतियों को अपने साहित्य का विषय बनाकर आजीवन संघर्ष करते रहे। वे प्रगतिशील के बजाय प्रयोगशील कहलाये। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में निराला का योगदान सराहनीय हैं। इन्होंने प्रेमचंद के समानांतर ही हिन्दी कहानी में यथार्थ जीवन को नया आयाम दिया हैं। निराला हिंदी कहानी को नयी दिशा एवं नयी दृष्टि देने का भी काम करते हैं।

भाषा के स्तर पर निराला छायावादी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग करते है, जिसके कारण कथा में प्रवाह और अर्थ सम्प्रेषण में बाधा उत्पन्न होती है। निराला की कहानियों का प्रारंभ और मध्य तो ठीक है लेकिन अंत में इन्होंने इतनी तेजी समेटा कि पाठक पर अच्छा प्रभाव नहीं डालता। निराला की कहानियाँ कथ्य की दृष्टि से मजबूत होते हुए भी शिल्प की दृष्टि से कमजोर रही है। इनकी कहानियाँ, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा और रिपोर्ताज सबको छूते हुए चलती हैं। इसलिए कभी-कभी इनकी कहानियाँ कहानी के स्थान पर संस्मरण अधिक लगती है। निराला जिस तरह कविता के क्षेत्र में प्रयोगधर्मी रहे हैं। उसी तरह कहानी के क्षेत्र में भी रहे। मुक्त छंद की तरह कहानी में भी इन्होंने अपने लिए एक नई राह या शिल्प बनायी।

यदि ध्यान से देखा जाय तो निराला की कहानियों का वितान छायावाद के आर-पार फैला है। निराला की कहानियों में छायावादी रूमानी कल्पना, आदर्श और प्रगतिवादी भावबोध दोनों मिलते हैं। भले ही निराला की कहानियों का शिल्प पक्ष कमजोर है पर कथ्य की दृष्टि से बेजोड़ प्रभाव उत्पन्न करती है। कविताओं की तरह इनकी कहानियों में भी 'मैं शैली' खुलकर आयी हैं। डॉ० रामविलास शर्मा जी लिखते है- "निराला ने स्त्रियों के दु:खी जीवन को लेकर अनेक कहानियाँ लिखी। जाति-प्रथा, ऊँच-नीच का भेदभाव, विधवाओं के प्रति कटु व्यवहार, पुरुषों का अहंकार, भारतीय परिवारों में घुटती नारी इन सबका चित्रण निराला की कहानियों में है।"[2] निराला समाज के प्रत्येक क्षण में जी कर भोगे हुये सत्य को अपने कथा-साहित्य के पटल पर उपस्थित करते है। उनके अनुभव और उनकी कल्पना का फलक लेकर उनके साहित्य का पट बुना गया है। कथा-शिल्पी निराला का सम्पूर्ण जीवन

निर्धनता, संघर्ष और अत्याचार को झेलते हुए बीता था, अतः उनकी स्वाभाविक सहानुभूति दलितों, शोषितों और ग्रामीणों के प्रति थी। उदारचेता निराला ने मनुष्य को इसीलिए मनुष्य रूप में पहचाना था और इसके अवगुणों के बावजूद भी उसके महत् व्यक्तित्व को प्रकाशित करने का प्रयास किया था। उनके कथा-साहित्य के पात्र भले ही दरिद्र समाज द्वारा पतित तथा उपेक्षित वर्ग के रहे है, किन्तु उनमें अपूर्व जीवन्त शक्ति थी। निराला के संघर्षशील व्यक्तित्व की छाप उनके आदर्श चरित्रों पर पड़ा है। जिस तरह 'राम की शक्तिपूजा' में निराला ने 'गागर में सागर' भरा है। उसी तरह कहानी में भी अपनी वाक्पटुता से आकर्षित किया है- "वह क्या जाने कि संसार किसे कहते है, एक साधारण-सी जगह के लिए कितने असाधारण कार्य करने पड़ते है, कितना छल, कितनी खुशामद, कितनी सिफारिश दो रोटियों की नौकरी के लिए आज जरूरी हो रही है।"[3] वहीं निराला अपने कथा साहित्य में भी काव्य की तरह ऐसी भाषा का प्रयोग करते है, जिसमें तत्समता, गहरी वेदना, करुणामिश्रित व्यंग्य है। "जब देखा कि सब सुनसान हो गया है, तब बाहर निकला। घोर अंधकार छाया हुआ था। आकाश में सावन की घटा छाई हुई थी, हवा चल रही थी, बादल गरज रहे थे..... घोर रात्रिकाल..... देखा कामदगिरि का बड़ा भयानक रूप हो रहा था मृत्यु भी आज तुच्छ है- सत्य का साक्षात्कार, चिरकाल के प्यार वाले राम एक तरह है, घोर प्रकृति, दुर्धर्ष पहाड़, अपार बाधाएँ प्राणों का मोह पैदा करती हुई एक तरह..... एक बार पहाड़ की ओर गर्दन उठाकर रामकुमार ने देखा- घोर अंधकार के सिवा कुछ भी न देख पड़ा।"[4]

छायावाद में जो निराला रोमैंण्टिक से परिपूर्ण सृजन कर रहे थे, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद सभी में कविताएँ लिख रहे थे उसी ढंग पर "इनकी कहानियाँ कही सर्वथा रोमैण्टिक संवेदना का निर्वाह करती है, कही सौन्दर्यवाद और प्रयोजनवाद या उपयोगितावाद में संतुलन का मार्ग खोजती है और कही यथार्थ और फनतासी के तनाव में नया रचनात्मक स्वाद देती है।"[5] इनकी कहानियाँ बनी बनायी परिभाषा या अवधारणा को ध्वस्त करती हैं और कहानी में मनोरंजक सार-संक्षेप ढूँढ़ने वाले को निराश करती है। उनकी प्रभाव-क्षमता और सीमा भिन्न प्रकार की है।

निराला के आदर्शवाद का एक रूप 'सखी' कहानी में है। गरीब लड़की लीला के लिए उसकी सखी 'ज्योतिर्मयी' जो त्याग करती है, वह भी असाधारण अकल्पनीय है। ज्योतिर्मयी की बात बहुत दूर तक एक आई०सी०एस० वर से तय हो चुकी है। एक दिन आत्मरक्षार्थ लीला उससे संरक्षण प्राप्त करती हैं। अन्त में ज्योतिर्मयी उसे लीला से ही विवाह के लिए राजी कर लेती है। इस कहानी की भाषा साधारण होने पर भी अर्थगाम्भीर्य है, छोटे-छोटे वाक्य प्रयोग से कहानी सरस और रोचक बनी रहती है- "घर पहुँचकर दंगल-का-दंगल जोत के कमरे में पैठा। वह जैसी जोत है। उसका पहनावा भी वैसे ही जगमगाता हुआ था। उस समय वह आइने के सामने खड़ी मुस्कुरा रही थी। एकाएक सांगीनियों को देखकर लजा गयी। बोली, "मुझे जरा देर हो गयी।" वजह कोई न थी। सोचकर कुछ

कह दे, हृदय और मस्तिष्क में उतनी जगह न थी..... एक अजीब भाव में सारी देह भरी हुई थी, अत: देर के लिए दबनेवाले स्वर में भी उच्छ्वास उमड़ रहा था।"[6]

बीसवीं सदी के दूसरे दशक में गद्य के क्षेत्र में जो गद्यकार लिख रहे थे वे सब भाषा, व्याकरण, लिंग, शैली आदि पर विस्तृत विमर्श कर रहे थे। इसी तरह शब्दों का चयन निराला में भी इतना बेजोड़ है कि छोटे-छोटे वाक्य में भी सरस अर्थ प्राप्त होता है- "नहीं, कमला बोली- 'अभी तो देख लो न, इनकी तरह-होठों पर हँसी, आबरू पर खम, इसलिए इकरार भी है, इनकार भी है।"[7] एक प्रकार से यह कहानी रोमाण्टिक है लेकिन निराला के रोमाण्टिक उपन्यासों की ही तरह उनकी रोमाण्टिक कहानियों में भी ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं, जो रचनाकार की सामाजिक जागरूकता का प्रमाण दे जाते है।

रामगोपाल सिंह चौहान ने निराला के गद्य साहित्य में 1936 के पहले और बाद की कहानियों में बुनियादी भेद न देखकर ज्यादा संतुलित दृष्टि का परिचय देते हुए कहते है- "अत: निराला के कहानी-साहित्य में छायावादी रूमानी आदर्श और प्रगतिवादी यथार्थ दोनों के तत्व मिलते हैं।"[8] 'देवी' कहानी के विषय में रामविलास शर्मा जी कहते हैं- "देवी कहानी संस्मरणात्मक ललित निबंध की शैली में आरंभ होती है।"[9]

'देवी' कहानी दु:खी और व्यंग्य विनोद के बीच एक अनोखा सम्बंध निर्मित करती है। भाषा की बुनावट कुछ इस प्रकार है- "बारह साल तक मकड़े की तरह शब्दों का जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा। मुझे यह ख्याल था कि मैं साहित्य की रक्षा के लिए चक्रव्यूह तैयार कर रहा हूँ। इससे उनका निवेश भी सुंदर होगा और उसकी शान्ति का संचालन भी ठीक-ठीक। पर लोगों को अपने फँस जाने का डर होता था, इसलिए इसका फल उल्टा हुआ। जब मैं उन्हें साहित्य के स्वर्ग ले चलने की बातें कहता था, तब वे अपने मरने की बातें सोचते थे, यह भ्रम था। इसलिए मेरी कद्र नहीं हुई। मुझे बराबर पेट के लाले रहे। पर ज्ञाणेमस्ती में भी मैं परियों के ख्वाब देखता रहा- इस तरह अपनी तरह से मैं जितना लोगों को ऊँचा उठाने की कोशिश करता गया, लोग उतना मुझे उतारने पर तुले रहे और चूँकि मैं साहित्य को नरक से स्वर्ग बना रहा था। इसीलिए मेरी दुनिया भी मुझसे दूर होती गयी.....।"[10]

तत्सम शैली के साथ-साथ लोकजीवन के कहावतों के द्वारा भाषा की समृद्धि समाज के पूर्वाग्रह और व्यक्ति विशेष के प्रति बेढंगी सोच भी अपने शब्दों के माध्यम से बतलाने का प्रयास किया है। एक दूसरे के प्रति बनते बिगड़ते सम्बन्धों को भी निराला ने अपने मनोविज्ञान की समझ के माध्यम से भाषा के प्रवाह में प्रवाहित किया है। निराला अपनी तुलनात्मक प्रवृत्ति के द्वारा इस कथा के माध्यम से समाज में व्याप्त विषमता को भी प्रदर्शित किया है। यहाँ तक निराला ने अपने आपको आत्मविश्लेषण के माध्यम से परखते रहते है। "दूबर होत नहीं कबहूँ पकवान के विप्र, मसान के कुकर" की सार्थकता मैंने दूसरों मित्रों में देखी, जिनकी निगाह दूसरों की दुनिया की लाश पर थी, वे पहले फटीचर थे, पर

अब अमीर बन गए है, दो मंजिला मकान खड़ा किया है, मोटर पर सैर करते हैं। मुझे देखते हैं, जैसे मेरा उनका नौकर-मालिक का रिश्ता हो। नक्की स्वरों में कहते है। फिर बड़े पैठकर मित्र के साथ हँसते हैं। वे उतनी दूर बढ़ गए हैं, मैं जिस रास्ते पर था, उसी पर खड़ा हूँ। जिसके लिए मेरी इतनी बदनामी हुई, दुनिया से मेरा नाम उठ जाने को हुआ, जो कुछ था, चला गया, उस कविता को जीते जी मुझे भी छोड़ देना चाहिए। जिसे लोग खुराफात समझते हैं, उसे न लिखना हो तो लोगों की समझ की सच्ची समझ होगी? रतिशास्त्र, पनिता विनोद, काम कल्याण में मश्क करते कौन देर लगती है? चार किताबों की रूह छानकर एक किताब लिख दूँगा।"[11]

भाषा पर निराला का अधिकार उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों से परिलक्षित होता है जो प्रदर्शित करते है कि सामाजिक, लोकजीवन, राजनीतिक शब्दों पर पकड़ तो गहरी थी ही साथ ही खगोलिकी, वैज्ञानिकी, युद्धशास्त्र के आधुनिक शब्दों के विषय पर भी पकड़ थी। "बिना राजा हुए राजर्षि होने की गुंजाइश नहीं, न ब्राह्मण हुए बगैर ब्रह्मर्षि होने की है। वैश्यार्षि या शूद्रार्षि कोई था, इतिहास नहीं, शास्त्रों में भी प्रमाण नहीं, अर्थात् नहीं हो सकता। बात यह कि बड़प्पन चाहिए। बड़ा राज्य, ऐश्वर्य, बड़े पौधे, तोप, तलवार, गोले-बारूद, बंदूक-किर्च, रेल-तार, जंगी जहाज, टारपेडो, माइन, सषमेरीन गैस, पल्टन-पुलीस, अट्टालिका-उपवन आदि सब बड़े-बड़े इतने कि वहाँ तक आँख नहीं फैलती, इसलिए कि छोटे समझें कि वे कितने छोटे हैं। चंद्र, सूर्य, वरूण, कुबेर, यम, जयन्त, इन्द्र, महेश तक बकायदा बाहिसाब ईश्वर के यहाँ भी छोटे से बड़े तक मेल मिला हुआ है।"[12]

निराला ने बालक, वयस्क, वृद्ध, बालिका, स्त्री, वृद्धा सभी की संवेदनाओं को बड़ी शालीनता से अपनी भाषा में व्यक्त करते हैं। परन्तु जब किसी अहंकारी या बड़े आदमी पर कुछ कहना होता है तो व्यंग्य का सहारा लेते है। इसी व्यंग्य के माध्यम से हुक्मरानों की स्थिति बतलाते हुए वे कहते है कि 'किस प्रकार से कोई नेता भले की आड़ में नागरिकों को तकलीफें पहुँचाता है।' जिसका परिणाम है कि मार्ग में पड़ने वाली जनता को नेता के काफिले के द्वारा रौंदा जाना। पगली भी यह सब पहली बार देख रही थी। आश्चर्य, नासमझी को समझ में बदलने की कोशिश के भाव भंगिमा को निराला ने बखूबी वर्णन किया है और कहते है कि 'कैसे पगली का बच्चा जुलूस के मार्ग में पड़ता है और भीड़ उसे दबाते हुए आगे बढ़ती जा रही है।' इस पर पगली का क्रोधित हो जाना और बच्चे को पुचकारना यह नेताओं और उनके समर्थकों की स्थिति को बतलाता है कि वे आम लोगों के प्रति कितनी चिंता रखते है।

महाप्राण निराला यह दिखाने की कोशिश करते है कि कैसे लोग धर्म की आड़ में किसी व्यक्ति की बदहाली और विपरीत स्थिति का उपहास उड़ाते हुए उस पर व्यंग्य की बौछार कर देते है और उसकी स्थिति के लिए उसे चारो तरु से कसूरवार ठहराते है। लोगों द्वारा अपनी सामाजिक जिम्मेदारी

का इसकी आड़ में मुँह मोड़ लिया जाता है। अत: विपरीत स्थिति में किसी व्यक्ति को कहीं भी शरण नहीं मिल सकता जब तक की वह अपने आप को सबल और सक्षम नहीं कर लेता। निराला ने साम्प्रदायिकता को अपने ढंग से देखने का प्रयास किया। साम्प्रदायिकता एक ऐसी आग है जो सब कुछ जलाती है परन्तु मरहम नहीं लगाती। "मैंने हिन्दू, मुसलमान बड़े-बड़े पदाधिकारी, राजा, रईस सबको उस रास्ते में जाते समय पगली को देखते हुए देखा पर किसी ने दिल से भी उसकी तरफ देखा, ऐसा नहीं देखा। जिन्हें अपने को देखने-दिखाने की आदत पड़ गई है, उनकी दृष्टि में दूसरे की सिर्फ तस्वीर आती है, भाव नहीं यह दर्शन मुझे मालूम था। जिंदा को मुर्दा और मुर्दा को जिंदा समझना भ्रम भी है और ज्ञान भी, बाड़ियों में आदमी का पुतला देखकर हिरन और स्यार जिंदा आदमी समझते हैं, उसी तरह ज्ञान होने पर गिलहरियाँ बढ़न पर चढ़ती है- आदमी उन्हें पत्थर जान पड़ता है। ऊपर वाले आदमी पगली को देखते हुए किस कोटि में जाते थे, भगवान जाने।"[13]

महाप्राण ने संस्मरणात्मक शैली में जिस ढंग से इस कहानी का ताना-बाना बुना है वह अत्यंत अलग ढंग का प्रयोग है। बीच-बीच में व्यंग्य की छौंक लगाते है। जिसके कारण सम्पूर्ण कहानी मर्मस्पर्शी हो पड़ता है। इस व्यंग्य का लक्ष्य यदि एक ओर छायालोक है, तो दूसरी ओर निराला है। उनकी भाषा में- व्यंग्य, तीक्ष्ण-विरोध, सरस-शैली, तत्सम शब्दों का प्रयोग, रोमाण्टिक भाव का एक उदाहरण इस प्रकार है-

"मैं देख रहा था, ऊपर के धुँए के नीचे दीपक की शिक्षा की तरह पगली के भीतर की परी इस संसार को छोड़कर कही उड़ जाने की उड़ान भर रही थी। वह साँवली थी, दुनिया की आँखों को लुभाने वाला उसमें कुछ न था, दूसरे लोग उसकी रुखाई की ओर रूख न कर सकते थे, पर मेरी आँखों को उसमें वह रूप देख पड़ा, जिसे मैं कल्पना में लाकर साहित्य में लिखता हूँ; केवल वह रूप नहीं भाव भी। इस मौन-महिमा आकार-इंगितों की बड़े-बड़े कवियों ने कल्पना न की होगी।"[14] निराला अपने अन्तर्मन में इन भावों को व्यक्त करते हुए कहते है- भाव-भाषण मैंने पढ़ा था, दर्शनशास्त्रों में मानसिक सूक्ष्मता के विश्लेषण देखे थे, रंगमंच पर रवीन्द्रनाथ का किया अभिनय भी देखा था, खुद भी गद्य-पद्य में थोड़ा-बहुत लिखा था, चिड़ियों तथा जानवरों की बोली बोलकर उन्हें बुलाने वालों की भी करामात देखी थी; पर वह सब कृत्रिम था, यहाँ सब प्राकृत पगली का रूप निराला को महाशक्ति की याद दिलाता हैं। जो लोगों की नजर में पगली है; वह निराला की नजर में देवी है। निराला की छायावादी संस्कृतनिष्ठ भाषा इस कहानी में भी दिखलायी पड़ती है। व्यंग्य जो निराला के गद्य का प्राण है, इस कहानी में दिखायी पड़ता है। इस कहानी में उनका गद्य दु:ख के चित्रण में कविता की तरह सारगर्भित और प्रभावशाली हो उठता है। निराला ने चतुरी चमार के स्थान, स्थिति, दशा का वर्णन इस प्रकार से बिंबात्मक शैली में किया है कि मानो आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो गया हो। चतुरी के प्रति निराला के मन में आदर का भाव कुछ साहित्यकारों के साहित्यिक रचनाओं के कारण किस प्रकार से

प्रस्फुटित होता है इसका भी वर्णन है अत: निराला ने दूसरे साहित्यिक रचनाकारों के रचनाओं को भी अपने व्यक्तित्व निर्माण में स्थान प्रदान किया है। चतुरी चमार तो कहानी मात्र है पर जीवन संग्राम में इस तरह की घटनाएं निराला के साथ निरन्तर प्रस्तुत होती रहती है। यह कही-न-कही विवेकानन्द के दरिद्र नारायण की सेवा का भी प्रभाव कह सकते है। इस कथा के माध्यम से निराला ने ग्रामीण-परिवेश में घटित होने वाली घटनाओं और प्रत्येक जाति और समुदाय के साथ-साथ बूढ़े, बच्चों के कार्यों का वर्णन करते हुए ग्रामीण संरचना और उसके जीवन्तता का वर्णन किया है। "पासी हफ्ते में तीन दिन हिरन, चौगड़े और बनैले सुअर खदेड़कर फाँसते हैं, किसान अरहर की ठूँठियों पर ढोर भगाते हुए दौड़ते है- कँटीली झाड़ियों को दबाकर चले जाते हैं, छोकड़े, वेल, बबूल, करील और बेर के काँटों के भरे रूँधवाए बागों में सरपट भागते हैं, लोग जेंगरे पर मड़नी करते हैं, द्वारिका नाई न्यौता बाँटता हुआ दो साल में दो हजार कोस से ज्यादा चलता है।"[15]

निराला ने सरोज स्मृति कविता में 'चमरौंधे जूते सा सकेल' शब्द का प्रयोग करते है। उसी तरह इस कहानी में भी चतुरी के जूते के माध्यम से उसकी विशेषता का वर्णन करते हुए निराला ने किसी क्षेत्र विशेष में वस्तु-निर्माण कला और उसकी विशेषता का वर्णन करता है। उदाहरण स्वरूप किस प्रकार से बाँदा के जूते चित्रकूट के जूतों से भिन्न हैं। समदृष्टता निराला जी के साहित्य में परिलक्षित होता है, किस प्रकार से चतुरी के ऊपर उसके आस-पास होने वाली घटनाओं का प्रभाव पड़ता है। वह किस प्रकार से नवाबों के प्रभाव में आने से उसके पहनावे में अंतर आया है और किस प्रकार से उस पर संतों के प्रभाव से संत-साहित्य में मर्मज्ञता हासिल किया है। बशर्ते चतुरी को लिखना नहीं आता, नहीं तो वह संपादक हो सकता था। इसके लिए विपरीत यह जूतों का निर्माण करता है, जबकि दोनों निर्माणकर्ता के रूप में ही है। इनके निरूपमा उपन्यास का नायक भी जूते की पालिश करने की दुकान लखनऊ में खोलता है। चतुरी के माध्यम से इस कथा साहित्य में ग्रामीण लोकगीत और संगीत के द्वारा लोगों में किस प्रकार से मनोरंजन होता है? और लोग किस प्रकार से तमाम समस्याओं के बावजूद अपने में मग्न रहते है बतलाने का प्रयास किया गया है। सूर, कबीर, तुलसी के पदों के माध्यम से किस प्रकार से लोगों में सामाजिक समझ और तार्किकता में वृद्धि हो रही है, बतलाने का प्रयास किया गया है। इन पदों के अर्थों को किस प्रकार से चतुरी जैसा एक कम पढ़ा-लिखा व्यक्ति समझ लेता है और समझाने का प्रयास करता है जो कि अत्यधिक पढ़े-लिखे विद्वानों की समझ के पहुँच से दूर है। "काका, ये निर्गुण पद बड़े-बड़े विद्वान नहीं समझते।" फिर शायद मुझे भी उन्हीं विद्वानों की कोटि में शुमारकर बोला, "इस पद का मतलब", मैंने उतरे गले से बात काटकर उभड़ते हुए कहा, "चतुरी, आज गा लो, कल सुबह आकर मतलब समझना। मतलब से गाने की तलब चली जाएगी।" चतुरी खँखाकर गंभीर हो गया। फिर उसी तरह डिक्टेट करता रहा।"[16]

'सुकुल की बीबी' संग्रह में सुकुल की बीबी, श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी और क्या देखा जैसी

कहानियाँ संकलित है। 'सुकुल की बीबी' कहानी में अन्तर्जातीय विवाह का निराला ने समर्थन किया हैं। इसकी नायिका कुँवर मुस्लिम है, जो विवाहित और ब्राह्मण सुकुल से प्रेम ही नहीं करती वरन् साहस के साथ उससे विवाह भी करती है। निराला ने अपनी चिरपरिचित शैली में इन कहानियों में समाज में हो रहे परिवर्तनों का वर्णन करते हैं। वे सदैव समाज से पृथक नहीं है, अपितु जुड़े रहते थे।

निराला के गद्य साहित्य की भाषा प्रासंगानुकूल और पात्रानुकूल होती है। साधारण रूप में जिस प्रकार का पात्र होता है, उसकी भाषा उसी प्रकार की होती है, जैसे यदि वे शिक्षित है तो निराला की भाषा में संस्कृतनिषतम, तत्समता आदि का प्रयोग रहेगा यदि अशिक्षित या ग्रामीण पात्र है तो भाषा में सहजता और अवधी मिश्रित ग्रामीणांचल भाषा का प्रयोग रहेगा। यथा- "सुकुल की बीबी की कुँवर एक शिक्षित युवती है, उसका संवाद इस संदर्भ में दर्शनीय है, कुछ लिखा होता तो सुकुल को इतनी समरसता न होती- उस शून्य पृष्ठ पर विश्व की समस्त प्रेमिकाओं की कविता मैंने लिखी थी।"[17] निराला की कहानियों में बोलचाल की भाषा का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ है यथा- अंग्रेजी के शब्द- स्टिक, लेक्चर, प्रोफेसर, साइन बोर्ड, डिप्टी कमिश्नर आदि शब्द ऐसे ही है। उर्दू फारसी के शब्द जैसे- जनाब, सिफारिश, सिर्फ, ख़ास आदि का प्रयोग उन्होंने कहानियों को प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से किया है।

निराला ने यत्र-तत्र अपनी कहानियों में सूत्रात्मक वाक्यों का भी प्रयोग किया है। जो कि उनके भाषा की पकड़ को मजबूत करने में सहायक हुए है- "अबला बिलोकहि पुरुषमय और पुरुष सब अबलाय।" यद्यपि निराला ने अपनी कहानियों में सामान्य बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग अधिक किया है, तथापि यत्र-तत्र भाषा का संस्कृतनिष्ठ रूप भी परिलक्षित होता है। यथा- "स्त्री चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानति, कुतो मनुष्यत:।" यहाँ पर वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सदृश गद्यकार के रूप में उपस्थित होते है।

निष्कर्ष

निराला के गद्य साहित्य में उनकी कहानियाँ, उनकी भाषा की वाहक है। जो न केवल उनकी भाषा का ज्ञान, उसके प्रति सजगता और लेखकीय प्रतिभा को प्रमाणित करती है। अपितु सूक्तिपरक वाक्यों का भी प्रयोग करके भाषा को समर्थ बनाने का सफल प्रयास करती दिखती हैं। यथा- "मनसा वाचा कर्मणा"

इस प्रकार निराला ने अपनी कहानियों में आत्मकथात्मक शैली, संस्मरणात्मक शैली, संवाद शैली, व्यंग्य शैली, पात्रात्मक शैली तथा मिश्रित शैली आदि का प्रयोग किया है। स्पष्टतया शैली की दृष्टि से निराला की कहानियों में वैविध्य परिलक्षित होता है, जिससे विभिन्न भावों का सम्प्रेषण सहजता

से हो जाता है। निराला ने अपनी भाषा में तत्सम, तदभव, देशज, विदेशी शब्दों के साथ-साथ सुन्दर पद-वाक्यों का चयन कथ्य, पात्र, भाव, शैली के अनुकूल किया है। सच्चे अर्थों में जीवन संग्राम की भाषा के रूप में गद्य को प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि उनके भाषायी संस्कार को देखकर हम उनके गद्य साहित्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। यही निराला की महती उपादेयता भी है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी का लोकवृत्त, फ्रेंचेस्का आर्सिनी, अनुवाद नीलाभ, वाणी प्रकाशन, संस्करण-2011, पृ० 175
2. रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ० 455
3. लिली, पृ० 93
4. वही, पृ० 96
5. परमानंद श्रीवास्तव, भारतीय साहित्य के निर्माता : निराला, पृ० 68
6. निराला रचनावली, भाग-4, संपा० नन्दकिशोर नवल, पृ० 352
7. वही, पृ० 352
8. संपा० इन्द्रनाथ मदान, निराला, पृ० 185
9. निराला की साहित्य साधना, भाग-2, रामविलास शर्मा, पृ० 471
10. निराला रचनावली, भाग-4, संपा० नन्दकिशोर नवल, पृ० 356
11. निराला-संचयिता, संपा० रमेशचन्द्र शाह, पृ० 274
12. निराला-संचयिता, संपा० रमेशचन्द्र शाह, पृ० 274
13. निराला-संचयिता, संपा० रमेशचन्द्र शाह, पृ० 277
14. निराला रचनावली, भाग-4, संपा० नन्दकिशोर नवल, पृ० 282
15. निराला-संचयिता, संपा० रमेशचन्द्र शाह, पृ० 282
16. निराला रचनावली, भाग-4, संपा० नन्दकिशोर नवल, पृ० 358
17. सुकुल की बीबी, निराला, पृ० 32

राजानक कुन्तक और अभिनवगुप्त पादाचार्य (ध्वनि और वक्रोक्तिः काव्यसौन्दर्य की प्रौढ़ता)

प्रो० मधुप कुमार
प्राचार्य
जे०पी० महाजन डिग्री कॉलेज
बालबुजुर्ग चौरीचौरा, गोरखपुर
पिन – 273201

दोनों शैव थे। अलंकार सम्प्रदाय को कुन्तक और अभिनवगुप्त ने रस ध्वनि को प्रतिष्ठित किया। भामह का सूत्र – शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् काव्य के स्वरूप और लक्षण संबंधी आधारभूत पोषणा है। भामह, उद्भट, वामन, रुद्रट सभी ने अपने ग्रंथ का नाम 'काव्यालंकार' ही दिया है। भामह ने अलंकार शब्द का कहीं भी अर्थ नहीं दिया। वामन अपने ग्रंथ का आरंभ ही – काव्य ग्राह्यलंकरात, सूत्र से करते हैं। अलंकार क्या है? इस पर वामन का उत्तर है– सौन्दर्यम् अलंकारः। दण्डी ने कहा काव्यशोभाकान् धर्मानलंकारान प्रचक्षते। स्पष्ट है कि अलंकार से दण्डी और वामन का आशय काव्यशोभा अथवा काव्यसौन्दर्भ है। अलंकार शब्द के इस व्यापक अर्थ के कारण ही भारतीय काव्यशास्त्र 'अलंकारशास्त्र' भी कहा गया। संस्कृत काव्यशास्त्र वास्तव में काव्यसौन्दर्य की खोज है। अब प्रश्न है कि उपमा आदि अलंकार है? नहीं। वामन ने स्पष्ट किया – सौंदर्य ही अलंकार है। जैसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा– सुन्दर वस्तु से अलग सुन्दरता नहीं, वैसे ही अलंकार काव्यसौन्दर्य से पृथक नहीं है। फिर उपमादि को अलंकार क्यों कहते हैं?

"उपमा आदि इस सौन्दर्य के निर्माण के लिए साधनी भूत हैं, इसलिए साधनदृष्टि से (साधन होने से) – करण व्युत्पति से – उन्हें अलंकार कहा गया है।" (भारतीय साहित्यशास्त्र, गणेश त्र्यंबक देशपाण्डे, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ०–07) उपमादि काव्यालंकार नहीं, उसके साधन है। बाद में अलंकार शब्द का अर्थ संकोच हुआ। वह उपमादि साधनों के लिए प्रयुक्त होने लगा।

यह सामान्य धारणा है कि भारतीय काव्यशास्त्र में रस और अलंकार की दो धारायें रही हैं। वस्तुतः ये दोनों काव्यसौन्दर्य के वाचक हैं। काव्यशास्त्रियों के समक्ष नाट्यशास्त्र की चुनौती थी। अलंकार और रस दोनों नाटक की चीज थे। नाट्यशास्त्र में रस की विशेष प्रतिष्ठा है, काव्यालंकार की भी चर्चा है। काव्यशास्त्र में आरंभ में काव्यालंकार शब्द विवेचित हुआ। अलंकार शब्द, जो सौन्दर्य का वाचक था,

आगे जब उपमादि के लिए प्रयुक्त होने लगा, तब काव्यसौन्दर्य की अभिव्यंज के लिए, नयी जरूरत महसूस होने लगी। ध्वान और वक्रोक्ति की खोज इसी स्थिति की देन है। कुन्तक के सामने समस्या काव्यसौन्दर्य के मूल स्वरूप को काव्यशास्त्रीय चिन्तन के केन्द्र में प्रतिष्ठित करने की थी। पहले उन्होंने यह स्पष्ट किया कि वे अलंकार ग्रन्थ का ही निर्माण कर रहे हैं-

लोकोत्तरचमत्कारकारिवैचित्र्यसिद्धये।
काव्यस्यायमलङ्कारः कोडायपूर्वो विधीयते ।।211

दूसरी कारिका में वे अपना प्रयोजन स्पष्ट करते हैं- अलौकिक चमत्कार को उत्पन्न करने वाले वैचित्र्य को सम्पन्न करने के लिए किसी अपूर्व, काव्यविषयक अलंकार ग्रंथ का निर्माण किया जा रहा है। कुन्तक आरंभ यहीं से करते हैं। अलंकार शब्दः शरीरस्य शोभातिशयकारित्वान्मुख्यतया कटकादिषु वर्तते। जैसे शरीर की शोभा की उत्कृष्टता के लिए कड़े आदि गहने का प्रयोग किया जाता है और उस कड़े आदि को अलंकार कहते हैं, वैसे ही शोभा (काव्यसौन्दर्य) की वृद्धि की उत्पादकता साधर्म्य के कारण लक्षण से काव्य के संदर्भ में उपमा रूपक आदि भी अलंकार कहे जाते हैं। कुन्तक की सबसे बड़ी देन है काव्यसौन्दर्य की अखंड सता की स्थापना। जब हम अलंकार किसी साधन को कहते हैं, तो अलंकार्य के रूप में काव्यवस्तु रहती है। कुन्तक ने स्पष्ट किया कि यह विभाजन सुविधा के लिए है। यदि अलंकार- अलंकार्य को अलग कर दिया जाए, तो काव्य की सत्ता ही समाप्त हो जाएगी। शब्दार्थ-शब्द और अर्थ की संयुक्त सत्ता अलंकार्य है और अलंकार है विविध प्रकार की वक्ता। वक्रतायुक्त अर्थात् अलंकृत शब्दार्थ ही काव्य है। इस दृष्टि से छठी-सातवीं कारिका देखी जा सकती है।

अलंकृतिरलंकार्यमपोद्धृत्य विवेच्यते।
तदुपायतया तत्त्वं कालंकारस्य काव्यता।।

अलंकार = काव्यसौन्दर्य को वाचक अर्थ में प्रतिष्ठित करते हुए सौन्दर्य की चर्चा को विकसित अर्थ में प्रतिब्ठित करने का सोच कुन्तक को है। यद्यपि अपने ग्रंथ को अलंकारग्रंथ कहने के कारण बाद की चर्चा में कुन्तक को वह महत्व नहीं मिला, जिसके वे अधिकारी हैं।

काव्यसौन्दर्य को विवेचना के मूल में स्थापित करने वाले दूसरे आचार्य आनन्दवर्द्धन और अभिनव गुप्त हैं। यहाँ अभिनवगुप्त की चर्चा की जाएगी, जिन्होंने अपनी व्याख्या द्वारा ध्वनि सिद्धात को पूर्ण प्रतिष्ठा दिलायी। कुन्तक के सामने जो साथ प्राथमिक प्रश्न था वही आनन्दवर्द्धन के सामने भी उपस्थित था। उस समय तक यह विचार स्थिर हो चुका था कि शब्द - अर्थ काव्यशरीर है- शब्दार्थशरीरन्तावतकाव्यम्। आनन्दवर्द्धन की वृत्ति के 'तावत्' शब्द पर टिप्पणी करते हुए अभिनवगुप्त ने कहा- यहाँ किसी की भी विप्रतिपति (विरुद्ध आशंका) नहीं है। ध्वन्यालोक और लोचन में क्रमशः काव्यसौन्दर्य या चारुत्वप्रतीति की विवेचना की गई है और उपलब्ध साधनों को अपर्याप्त बताते हुए ध्वनि की स्थापना हुई है। ठीक

यही पद्धति वक्रोक्तिजीवितम् में भी अपनायी गई है। लोचनकार के अनुसार चारुत्व (काव्यसौन्दर्य) दो प्रकार का होता है- स्वरूपमात्रनिष्ठ और सङ्घटनाश्रित। एक का संबंध उपमादि अलंकारों से है, दूसरे का माधुर्य आदि गुणों से। प्रतिपक्षी के तर्कों को आनन्दवर्द्धन और लोचनकार अभिनवगुप्त ने सुसंगत ढंग से रखा है। इस व्याख्या क्रम में आनन्दर्वद्धन ने स्पष्ट किया कि ध्वनि का इनमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता है। अभिनवगुप्त ने इसे अन्वय - व्यतिरेक के सिद्ध किया। इससे यह स्थापित हुआ कि चारुत्व अर्थात् सौन्दर्य काव्य का अनिवार्य घटक है, इसके बिना काव्य नहीं हो सकता। इस पर आक्षेपक प्रश्न कर रुकता है- "तो चारुत्वप्रतीति ही काव्यात्मा है यह आपको स्वीकार करना होगा।" अभिनवगुप्त का इस पर उत्तर है- "बिल्कुल ठीक! आपका कहना हमें स्वीकार है। इस संबंध में तो हमारा आपका कोई विवाद ही नहीं।" यच्च्चोक्तम् - चारुत्वप्रतीतिस्तर्हि काव्यस्यात्मा स्यात् इति', तदङ्गीकुर्म एवं । नास्ति खल्वंय विवाद में इति।

भारतीय काव्यशास्त्र में प्राथमिक और विशिष्ट का प्रश्न महत्वपूर्ण रहा है। प्राथमिक चीज शब्दार्थ है। वह विशिष्ट होता है- वक्रता से, ध्वनि से या अन्य विन्यासों (गुण, अलंकाराये) से। यह कहा जा सकता है कि कुंतक के यहाँ प्राथमिक और विशिष्ट दोनों को एकरूप करने का प्रयास है, तो आनन्दवर्द्धन - अभिनव गुप्त के यहाँ प्राथमिक के विशिष्ट रूप की विवेचना अधिक है। कुन्तक स्पष्ट करते हैं कि शब्द और अर्थ की प्रतिस्पर्द्धन से ही साहित्य की रमणीय स्थिति बनती है-

साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसौ।
अन्यूनानतिरिक्तत्व मनोहारिण्यवस्थितिः 11171।।

शब्द और अर्थ में कोई न तो न्यून है, न अतिरिक्त यह समान प्रतिस्पर्द्धा है। विशेष विन्यासभंगिमा। यह विन्यास 'शोभाशालिता' के लिए है। यही सहृदय के आह्लाद का कारक है- सैव च सहदयालाकारिता। यह आह्लाद अलौकिक है। यहाँ चतुर्वर्ग के फल भी अतिक्रांत हो जाते हैं। यह चमत्कार जनित आहलाद काव्यामृत है। पाँचवीं कारिका में ही कुन्तक ने कहा है -

चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारों वितन्यते।।

ध्वनि की स्थिति विशिष्ट काव्य के सन्दर्भ में व्यक्त होती है-

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूदिभिः कथितः। वक्रोक्ति - जीवितम् की सत्रहवीं कारिका से ध्वन्यालोक की इस तेरहवीं कारिका का मिलान करें-

यत्रार्थ : शब्दों वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभि कचितः।।

अर्थात् जहाँ अर्थ अपने-आपको अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके (प्रतीयमान) अर्थ को व्यक्त (अभिव्यक्त) करते हैं, वह काव्यविशेष विद्वान लोगों द्वारा ध्वनि कहा जाता है। इस विशिष्टता का विन्यास अन्यूनातिरिक्तत्वमनोहारिव्यवस्थिते से मिलता-जुलता है। वहाँ शब्द और अर्थ की बराबरी की प्रतिस्पर्द्धा है, यहाँ दोनों खुद को गुणीभूत कर लेते हैं। यह भी एक तरह का विन्यास ही है, जिससे वह अर्थ विशेष अर्थात् ध्वनिकाव्य का प्रकाशन होता है। अभिनवगुप्त ने 'स' को अपने ढंग के व्याख्या की है। कारिका में प्रयुक्त स – "वह अर्थ – अथवा शब्द, अथवा व्यापार। ध्वनति या ध्वनन करता है, (इस व्युत्पत्ति) के अनुसार) वाच्य अर्थ ध्वनि है, इस प्रकार शब्द भी। 'ध्वन्यते' (इस व्युत्पत्ति के अनुसार) व्यंग्य ध्वनि है, और शब्द और अर्थ का व्यापार 'ध्वननम्' (इस व्युत्पत्ति के अनुसार) व्यंग्य ध्वनि है। कारिका द्वारा तो प्रधानतया समुदाय ही काव्यरूप मुख्य रूप से 'ध्वनि' है, ऐसा प्रतिपादन किया है।" (ध्वन्या लोकः प्रथम उद्योत, पृ० – 104-05) यहाँ समुदाय रूप में ध्वनि है या नहीं- इस प्रश्न को छोड़ भी है, तो मुख्य चीज यह सामने आती है कि चारुता की वृद्धि में सबका विन्यास। यह चारुता ही रमणीयता का मैदान है- जहाँ, शब्द-अर्थ की गतियाँ अन्ततः काव्यसौन्दर्य की वृद्धि करते हुए उसे विशिष्ट बनाती हैं। यह जो चारू काव्य है, वह ललित और उचित सन्निवेश के कारण है। इसी के द्वारा शब्दार्थ रूपी शरीर साररूप में सहृदयश्लाध्य अर्थ के साथ प्रशंसा पाता है। अभिनवगुप्त 'ललित' शब्द से गुण और अलंकार का अनुग्रह (सहायकत्व) और उचित से रस ध्वनि का जीवितत्व बताते हैं। आनन्दर्वद्धन के 'ललितोचितसन्निवेशचारुणः शरीरस्येवात्मा...' प्रसंग में अभिनव गुप्त स्पष्ट करते हैं कि ध्वनि गुण – अलंकार से पृथक है। प्रतिपक्षी चारुत्व के हेतु होने का तर्क देता है। ध्वनि के विषय में आनन्दवर्द्धन ने स्पष्ट किया है कि -प्रतीयमानं पुनस्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकिनाम्....। वह प्रतीयमान अर्थ अतिरिक्त है। जैसे स्त्रियों में 'लावण्य' जो ततत् अवयवों से व्यतिरेक (पृथक्) रूप में भासित होता है। यह प्रतीयमान ही आत्मा की भाँति साररूप में स्थित होता है। अभिनवगुप्त इसकी विशिष्टता को स्थापित करते हुए तर्क देते हैं- ध्वकेरात्मस्वरूपत्वाद्धेतुरसिद्ध इति दर्शितम्। न लात्मा चारुत्वहेतुर्देहस्पति भवति। उनके तर्क हैं-"चारुत्व के हेतु होने के कारण ध्वनि गुण और अलंकार से व्यतिरिक्त (पृथक) नहीं है'; वहाँ यह दिखा दिया कि 'ध्वनि के आत्मस्वरूप होने के कारण हेतु असिद्ध है। आत्मा शरीर के चारुत्व का हेतु नहीं होता है। अगर ऐसा हो भी जाता है तथापि वाच्य में व्यभिचारी (अनैकान्तिक) है, क्योंकि अंलकार्य ही अलंकार नहीं होता। इसलिए भी वाच्य अंश का त्याग है, गुणी हो गुण नहीं होता। " (वही, पृ०-454) अभिनवगुप्त जो तर्क ध्वनि के पक्ष में दे रहे हैं, उसे कुन्तक वक्रोक्ति के संदर्भ में दे चुके थे। 'वक्रोक्ति जीवितम्' की तेरहवी कारिका में कुन्तक कहते हैं –

शरीरं चेदलङ्कार : किमलङ्कुरुतेडपरम् ।
आत्मैव नात्मनः स्कन्धं क्वचिदप्यधिरोहति ।। 13।।

शरीर ही यदि अलंकार है, तो किस दूसरे को वह अलंकृत करता है? कहीं भी शरीर ही शरीर के कंधों पर नहीं चढ़ता है इसी आधार पर उन्होंने वर्ण्यमान वस्तु के स्वभाव को अलंकार्य अलंकार कहा है। आनन्दवर्द्धन का प्रतीयमान विशेष है। वही सार और आत्मा है। लेकिन वह सर्वत्र नहीं पाया जाता–वाणीषु महाकवीनां ही गोचर होता है। कुन्तक भी उसे अपूर्व शोभाविशालिता से विभूषित लोकोत्तर चमत्कार से युक्त बताते हैं। वह रमणीयता सौभाग्य से कविवाणी को प्राप्त होती है–

यस्मात्किमपि सौभाग्यं तद्विदामेव गोचरम्
सरस्वती समभ्येति तदिदानीं विचार्यते।।

जैसे कुन्तक शब्द अर्थ के बीच स्पर्श की बात करते है, आनन्दवर्द्धन भी मानते हैं कि शब्द और अर्थ तत्पर होकर व्यङ्ग्य के प्रति स्थित रहते हैं। अलंकारादि की ध्वनि के साथ एक स्थिति है– अंग और अंगो की तरह। अभिनव गुप्त इसकी व्याख्या करते हुए बताते हैं कि ध्वनि का वाच्य–वाचक भाव अंलकार आदि से तादात्मय नहीं है। अभिनव गुप्त इसे आदि का समुदाय तो है ही, ध्वनि उन्हीं के मध्य प्रधान रूप से स्थित है– यत्रापि वा तत्त्वं तत्रापि ध्वनेर्महाविषयत्वान्न तन्निष्ठत्वमेव। कुन्तक का भी कहना है कि वह काव्यसौन्दर्य समुदाय रूप शब्द–अर्थ की स्पर्श से उत्पन्न रमणीयता से द्योतित होता है। कुन्तक का भी मानना है कि शब्दों–अर्थों के बीच होड़ लगती है। शब्द की स्पर्श शब्द के अर्थ की अर्थ से। इस समुदाय रूप स्पर्द्धा से अलौकिक शोभा सृजित होती है–

सहृदयाहलादकारी परस्पर स्पर्धया परिस्फुरति, सा कचिदेव
विन्यास सम्पत् साहित्यण्यपदेशमाग् भवति।

यहाँ एक तम्य उल्लेखनीय है कि आनन्दवर्द्धन 'अर्थ' को प्रधानता देते हैं, कुन्तक शब्द–अर्थ दोनों को कहीं–कहीं शब्द पर ज़ोर है। यह सिर्फ़ व्यावहारिक पक्ष है। वास्तव में दोनों के यहाँ शब्द–अर्थ के यहाँ शब्द–अर्थ के परस्पर संबंधा का विशेष संज्ञान है। कुन्तक संरचनात्मक अन्विति पर जोर देते हुए कहते हैं कि– अर्थ का पर्यालोचन किये बिना भी। (अर्थात् बिना अर्थ को समझे हुए ही) वाक्य का विन्यास की सौन्दर्य रूप सम्पत्ति के द्वारा जो गीत के सदृश (तद्विद) सहृदयों के हृदयों को आह्लादित कर देता है। आनन्दवर्द्धन कहते है कि वह अर्थ है और उस अर्थ की अभिव्यक्ति की सामर्थ्य रखने वाला कोई शब्द है। कुन्तक गीत के समान–गीतवद्धृदयाह्लादं – कहते हैं। उधर ध्वनि स्फ़ोह रूपा है। आनन्दवर्द्धन लिखते हैं – प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणा; व्याकरणामूलत्वात्सर्वविद्यानाम्। ते च श्रूयमाणेषु वणैषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति। वैयाकरण श्रूयमाण वर्णों के लिए 'ध्वनि' यह व्यवहार करते हैं। आनन्दवर्द्धन ने व्याकरण को सभी विद्याओं का मूल माना है और वैयाकरणों को सभी विद्व ानों में मुख्य। अभिनवगुप्त ने स्फोट और ध्वनि का संबंध बताया। उन्होंने घण्टा नाद और तदुपरान्त अनुरणन के इसकी तुलना की 'अनुरणनरूपोपलतित' व्यंग्य अर्थ 'ध्वनि' के नाम से व्यवहृत है। स्पष्ट

है कि कुन्तक गीत की संरचना के सहारे उस सौन्दर्य को स्पष्ट करते हैं, आनन्दवर्द्धन–अभिनवगुप्त स्फोट–ध्वनि के श्रूयमाण अनुरणन द्वारा।

कहना न होगा कि रचना–प्रक्रिया और काव्यसौन्दर्य के उद्‌घाटन की यह द्वन्द्वात्मक पद्धति है। दोनों ही शैव थे। शिव–पार्वती के स्वरूप का उपासक ही काव्यसौन्दर्य की ऐसी परस्पराश्लिष्ट और अतिरिक्त बोधक व्याख्या कर सकता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन को त्रिक् भी कहा जाता है। कुन्तक का संबंध स्पन्द से है, तो अभिनवगुप्त का प्रत्यभिज्ञा से। दोनों की विचारधारा एक होने पर भी स्पन्द और प्रत्यभिज्ञा के साहित्य पृथक–पृथक् हैं। प्रायः दोनों को मिलाकर एक ही में रखा जाता है। कुन्तक कहते हैं– पदार्थ का नाना प्रकार के धर्मों से युक्त होना संभव है, किंतु उसके स्वस्पन्द स्वरूप की विशेषता के कारण विशेष आह्लाद उत्पन्न होता है–

काण्ये यः सहृदयाह्लादकारिस्वस्पन्द सुन्दरः। उधर आनन्दवर्द्धन ने कहा– तावेव शब्दार्थौ महाकवेः प्रत्यभिज्ञेयौ। अभिनवगुतप्त 'प्रत्यभिज्ञेय' का अर्थ करते हुए कहते हैं–

काव्यं तु जातु जायेत कस्यचित्प्रतिभवति। अर्थात् काव्य तो कदाचित् किसी प्रतिभावान् से उत्पन्न होता है। वे इसका अर्थ विस्तार सहृदय के पक्ष में भी करते हैं। विश्वेश्वर लोक के समक्ष कवि–सहृदय के वैभव विकास का यह मार्ग है। इस विवेचना क्रम में यह भी एक तथ्य है कि कश्मीरी शैव दर्शन वस्तुवादी प्रत्ययवाद (Realistic Idealism) भी कहलाता है।

संदर्भ सूची

1. ध्वन्यालोक :– श्रीमदभिनवगुप्तपादविरचित 'लोचन' सहितः हिन्दी व्याख्याकारः आचार्य जगन्नाथ पादक चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी
2. वक्रोक्ति जीवितम् : व्याख्याकार श्री राधेश्याम मिश्र चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी
3. अभिनवगुप्त : गणेश त्र्यं, देशपांडे साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
4. भारतीय साहित्य शास्त्र – गणेश त्र्यंबक देशपांडे राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली
5. हिन्दी सर्वदर्शन संग्रह भाष्यकार – डॉ० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्बा विद्याभवन

हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना तथा उत्तरशती का प्रभाव

डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कूबा पी०जी० कॉलेज,
दरियापुर, नेवादा, आजमगढ़

उत्तर शती के उपन्यास लेखन का फलक विषय एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से जितना व्यापक है, उतनाही वह विविधतापूर्ण भी है। उत्तर शती के काल प्रवाह में उपन्यासों के द्वारा मानव जीवन की निजी संवेदनाओं से लेकर पर्यावरण तक के तमाम पहलुओं की दखल ली गयी है। बावजूद इसके उत्तर शती का रचना समय 'स्त्री' तथा 'दलित' इन दो हाशिए के बिंदुओ को साहित्य जगत की मुख्यधारा में ला खड़ा करने में सफल रहा है। निश्चित ही इसके पीछे स्त्री तथा दलित रचनाकारों की भूमिका अहम् रही है। परिणाम स्वरूप आज 'स्त्री' और 'दलित' इन दो विषयों में लेखक, पाठक तथा आलोचकों को नये और अलग दृष्टिकोण से सोच विचार करने के लिए विवश किया है।

सन् 1970 के दशक के आस-पास मराठी साहित्य में दलित लेखकों द्वारा लिखित विद्रोही तथा आत्मकथनात्मक साहित्य का विस्फोट हुआ और उसी से प्रेरणा लेकर भारतीय साहित्य में 'दलित विमर्श' विगत तीन दशकों की सृजन यात्रा का सफर तय करने के बाद अपनी स्वतंत्र पहचान कायम करने में सफल साबित हुआ है। हालांकि आज भी हिंदी का दलित साहित्य मराठी की तुलना में प्रौढ़ और परिपूर्ण नहीं बना है। परंतु यह साहित्य उपन्यास, आत्मकथा, कहानी, कविता तथा वैचारिकी के रूप में निरंतर विकासमान बनने की अवस्था में है।

आज हम हिंदी में दलित साहित्य की जब चर्चा करते हैं तब इस साहित्य के दो पहलू हमारे सामने आते हैं- एक 'दलित विमर्श' और दूसरा 'दलित चेतना'। 'दलित विमर्श' पर टिप्पणी करते हुए तेजसिंह कहते हैं- "हिंदी साहित्य में दलित साहित्य के प्रादुर्भाव से पहले दलित चेतना नाम की कोई अवधारणा मौजूद नहीं थी। पर उसमें दलित विमर्श की प्रक्रिया अवश्य मौजूद थी जो निश्चित रूप से भारतीय जनजागरण की चेतना का परिणाम है।"[1] वे आगे कहते हैं- "भारतीय नवजागरण के व्यापक प्रभाव तथा तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक दबावों के चलते कुछ सवर्ण साहित्यकारों ने दलितों के प्रति अपनी चिंता प्रकट करते हुए दलितों की सामाजिक-आर्थिक और धार्मिक समस्याओं पर अपना ध्यान केंद्रित किया। इस तरह हिंदी उपन्यासों में 'दलित विमर्श' की प्रक्रिया शुरू हुई।"[2]

इसी प्रकार 'दलित चेतना' की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे जी ने कहा है- "यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि दुनियाभर के संवेदनशील साहित्यकारों की दृष्टि मानवतावादी होती है, फिर दलित चेतना की दृष्टि की विशिष्टता क्या है, तो इसका उत्तर है कि परंपरा में स्थित मानवतावाद आदर्श के स्तर तक ही रहता है, परंतु दलित चेतना का मानवतावाद 'यथार्थ' के स्तर पर, आचरण के स्तर पर क्रियाशील है।"[3] दलित चेतना की संकल्पना यदि हर्बर्ट मार्क्यूस के शब्दों में कहे तो "यह एक प्रति-सांस्कृतिक चेतना है और इसी लिए विद्रोही भी। इस चेतना की जड़ में भारतीय सामाजिक संरचना है, जो न सिर्फ जातिपर आधारित है, बल्कि इस जाति व्यवस्था को धार्मिक वैधता भी प्राप्त है।"[4] अत: दलित साहित्य में दलित लेखकों द्वारा अभिव्यक्त जीवन की व्यथा, उपेक्षा तथा आक्रोश पर कमलेश्वर ने कहा है- "दलित साहित्य दलितों के पाँच हजार वर्षों से भोगते आ रहे दु:ख, दर्द, अपमान, उपेक्षा के विरुद्ध कलमबद्ध आवाज है।"[5] अत: यह कहा जा सकता है कि "समकालीन संदर्भ में दलित साहित्य की चर्चा जोरों पर है, दलित आंदोलन का संबंध भी इसके साथ असंदिग्ध रूप से है। यह वर्ग दबाव की जिस पीड़ा को भोगता आ रहा है, उसकी सहज प्रतिक्रिया के रूप में इसका आविर्भाव हुआ है।"[6]

जैसा कि उपर हमने कहा है, 'दलित विमर्श' और 'दलित चेतना' यह दोनों पहलू भिन्न है। हिंदी उपन्यास साहित्य का आरंभ से यदि अवलोकन करे तो पाएंगे कि अधिकतर उपन्यासों में दलित जीवन के विविध आयामों को मात्र अभिव्यक्ति मिली है और कुछेक उपन्यासों में दलित पात्र दीन-हीन रूप में दर्शाए गए हैं। परंतु दलित विमर्श की यह स्थिति उत्तरशती के उपन्यासों में परिवर्तित हुई दिखाई देती है। क्योंकि सत्तर के दशक के बाद मराठी के "दलित साहित्य के कारण सामाजिक अभिसरण की प्रक्रिया आरंभ हुई और बदलाव की हवा तेज हुई। अनेक दलित लेखक लिखने लगे। समाज के विविध संस्तरो से लेखक पैदा हुए।"[7] परिणाम स्वरूप उनके द्वारा रचित दलित साहित्य में विषमता के प्रति विद्रोह समानता का आग्रह तथा परिवर्तन के लिए हाशिए के लोगों में चेतना भर देनेवाला वैचारिक आंदोलन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। "दलित वर्ग में जब शिक्षा का विकास हुआ और उनमें रचनाकार बने, तो उन्होंने अपने दमन और शोषण के लिए इतिहास को खंगालने की कोशिश की।"[8]

"बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में प्रकाशित उपन्यासों ने जिन विषयों को शिद्दत के साथ उठाया है, उससे उनकी क्षमता का पता चलता है। यह मात्र संयोग नहीं है कि उपन्यासकारों ने इतिहास के किसी कालखण्ड या इतिहास की किसी ऐसी घटना को जिसके सूत्रों ने पूरे इतिहास को ही बदल दिया हो, पर अपनी संवेदनशील नजर से उपन्यास लिखे, राजनीतिक के क्षरण के बीच से निकल रही चिन्ता-धारा को उपन्यासकारों ने सकारात्मक दृष्टि से उभारा है, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को नये नजरिये से देखा-परखा है। अपने इतिहास पुरुषों को उनके सम्पूर्ण कार्यकलापों और तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं के साथ भारतीय जन-मानस की आवश्यकताओं को कसौटी पर परखा तथा यह

यह भी देखा है कि हमारे पूर्वजों ने कहां ऐसी गलती की है, जिसका परिणाम हम आज तक भोग रहे हैं। यह केवल संयोग मात्र नहीं है कि उपन्यासकारों ने भारी-भरकम विषयों के साथ बहुत ही छोटे लेकिन बहुत प्रभावशाली विषयों को अपने उपन्यासों में लिया है और घटनाओं के साथ उनके घटित होने की स्थितियों की अधिक पड़ताल की है।"[9]

उत्तर शती के समय प्रवाह में 'दलित विमर्श' तथा 'दलित चेतना' को केंद्र में रखकर लिखे गए उपन्यासों में महत्वपूर्ण है- 'धरती धन न अपना' (जगदीशचंद्र), 'मुर्दाधर' (जगदंबाप्रसाद दीक्षित), 'एक टुकड़ा इतिहास' (गोपाल उपाध्याय), 'नाच्यौ बहुत गोपाल' (अमृतलाल नागर), 'यथा प्रस्तावित', 'परिशिष्ट' (गिरिराज किशोर), 'सोनभद्र की राधा' तथा 'जंगली सूअर' (मधुकर सिंह), 'अनारो' (मंजूल भगत) 'कगार की आग' (हिमांशू जोशी), 'हजार घोडों का सवार' (यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र'), 'सर्पगंधा' (शैलेश मटियानी), 'शैलूष' (शिवप्रसाद सिंह), 'किस्सा गुलाम' (रमेशचंद्र शाह), 'छप्पर' (जयप्रकाश, कर्दम), 'हिरा परा बाजार में' (सुबोधकुमार श्रीवास्तव), 'धार' (संजीव), 'मोरी की ईट' (मदन दीक्षित), 'उस शहर तक' (तेजिंदर), 'अपनी सलीबें' (नमिता सिंह), 'मुक्तिपर्व' (मोहनदास नैमिशराय), 'जस तस भई सबेर' (सत्यप्रकाश), 'मिट्टी की सौगंध' (प्रेम कपाडिया), 'अल्मा कबूतरी' (मैत्रेयी पुष्पा) आदि।

समग्र उपन्यासों में पिछड़े वर्ग के अंतरंग और बहिरंग पक्ष का विश्वसनियता के साथ उद्घाटन किया गया है। उत्तर शती के इन दलित विमर्शमूलक उपन्यासों की यदि पड़ताल की जाए तो यह स्पष्ट होगा कि यह उपन्यास मात्र दलित वर्ग की व्यथा का बखान ही नहीं करते बल्कि उन लोगों में वैचारिक चेतना भी संचारित करते है। "अत: पिछड़े वर्ग से यहाँ वह समूचा समाज अभिप्रेत है जो आज की सभ्यता तथा संस्कृति की मुख्यधारा से कटकर किनारों पर पड़ा है और शिक्षा तथा अन्य सभी जरूरी सुविधाओं से वंचित रहकर उपेक्षित शोषित-गृहित जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।"[10] उत्तर शती के इन दलिताख्यानमूलक उपन्यासों का समग्रता से यदि अध्ययन किया जाए तो पाएंगे कि यह उपन्यास उस समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा धार्मिक चेतना जगाने का भी काम करते हैं।

उत्तर शती के उपन्यासों में व्यक्त बहुआयामी चेतना पर यदि गौर करे तो सबसे पहले जगदीशचंद्र के 'धरती धन न अपना' की दखल लेना आवश्यक होगा। इस उपन्यास में "स्वाधीनतापूर्ण पंजाब की ग्रामीण पृष्ठभूमि में दलित जीवन की कथा गहरी संवेदना और कलात्मक तटस्थता के साथ प्रस्तुत की गयी है।"[11] अंत मे 'उपन्यासकार ने सामूहिक शक्ति का भी संकेत दिया है, जो सही नेतृत्व पाकर समाज में क्रांति को जन्म दे सकती है।' इसी प्रकार गोपाल उपाध्याय का उपन्यास 'एक टुकड़ा इतिहास' की चनुली ब्राह्मन युवक से प्रेम विवाह कर दलित जाति के अभिशाप से मुक्ति पाना चाहती है, पर उसका सपना पूरा नहीं होता। इसके बावजूद वह हार नही मानती और अपनी संघर्ष क्षमता का

परिचय देती हुई 'चंदा देवी' में रूपांतरित होकर दलित समाज के उत्थान के लिए लड़ती और सवर्ण समाज को चुनौति देती है। शैलेश मटियानी कृत 'सर्पगंधा' का विषय पर्वतीय क्षेत्र का दलित समाज है, जो अपने अधिकार की लड़ाई लड़ रहा है। कबीलाई जीवन जीनेवाली 'नट' जाति को केंद्र में रखकर शिवप्रसाद सिंह ने 'शैलूष' इस उपन्यास का निर्माण किया है। इस उपन्यास में एक पढ़ी-लिखी ब्राह्मण युवती सावित्री एक नट युवक से प्रेम विवाह कर नट-पत्नी बनकर उच्चवर्ग के दमन और शोषण से नटी की मुक्ति का संघर्ष छेड देती है। और इस संघर्ष में जीत नट-समाज की ही होती है। रमेशचंद्र शाह के 'किस्सा गुलाम' में दलित जाति में जन्में एक संवेदनशील पात्र कुंदन की कुंठा और विद्रोही भावना का अंकन किया गया है। कुंदन दलित समाज में पैदा हो रही राजनीतिक चेतना और सामाजिक विद्रोह का प्रतिनिधित्व करता है। मधुकर सिंह का उपन्यास 'सोनभद्र की राधा' का नायक गोविंद चमार जाति का सुशिक्षित युवक है। यह जातियता की दशा को कम करने के लिए गाँव की अनुराधा नामक युवती से अंतरजातिय विवाह कर रामलीला मंडली के द्वारा गाँव-गाँव घूमकर सामाजिक समता स्थापित करने का प्रयास करता है। उन्हीं का एक अन्य उपन्यास 'जंगली सूअर' में दलित जाति के लोग अपने हक्क और अधिकारों के लिए 'खेतिहर मजदूर किसान संघ' की स्थापना कर जुल्म के खिलाफ विद्रोह करते हैं। नमिता सिंह ने 'अपनी सलीबें' इस उपन्यास में आई. ए. एस. अफसर दलित युवक ईशू और सवर्ण युवती निलिमा के अंतर्जातिय विवाह की घटना को प्रस्तुत कर जातियता की दीवारें गिरने का संकेत दिया है।

"काशी के मुसलमान बुनकर भी पिछड़े वर्ग की हमारी अवधारणा के अंतर्गत ही आएँगे जिनपर बहुत सार्थक उपन्यास अब्दुल बिस्मिल्लाह ने लिखा है। उनका 'झीना-झीनी-बीनी चदरिया' यह उपन्यास बुनकरों को पूँजीपति तथा व्यावसायिकों के आर्थिक शोषण से मुक्त होने के लिए एकजुट होकर संघर्ष करने की चेतना प्रदान करता है। इसी प्रकार मंजुल भगत की 'अनारों' महानगर में रहते हुए आर्थिक संघर्ष कर अपने परिवार का गुजारा करती है वह कहीं भी लाचार नजर नहीं आती। शताब्दी के अंतिम दशक में दलित वर्ग से जुड़े उपन्यासकारों ने भी अपने उपन्यासों के द्वारा दलित चेतना को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। इनमें जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' तथा मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व' है। यह दोनों उपन्यास सुशिक्षित दलित युवकों के संगठनों द्वारा अपने समाज में जागृती निर्माण करने की प्रक्रिया का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं। इसी प्रकार सत्यप्रकाश कृत 'जस तस भई सवेर' तथा प्रेम कपाडिया का 'मिट्ठी की सौगंध' इस दिशा में महत्वपूर्ण उपन्यास माने जाते हैं। इसके अलावा भी ऐसे कई उपन्यास है जिनमें कम अधिक मात्रा में दलित विमर्श तथा दलित चेतना का जिक्र आया है।

अत: कहा जा सकता है "दलित साहित्य अपने समय से लड़ते हुए आनेवाले कल की बेहत्तर जिंदगी के लिए आशावादी है। तमाम विपरित परिस्थितियों, चुनौतियों के संकट के बावजूद दलित साहित्य ने

अपनी उर्जा और सम्भावनाएँ क्षीण नहीं होने दी है।"[12] निश्चित ही भविष्य में भी यह साहित्य दलित वर्ग के तमाम पहलुओं पर निष्पक्षता तथा इमानदारी से अपना रचना कर्म निभाएगा इसमें कोई शक नही।

संदर्भ सूची

1. हंस- सं. राजेंद्र यादव, (जनवरी 2001), पृ. 28
2. दलित साहित्य : स्वरूप और संवेदना – डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे, पृ. 37
3. दलित प्रसंग – सं. प्रणव बंद्योपाध्याय, पृ. 17
4. हंस सं. राजेंद्र यादव, (सितंबर, 1995), पृ. 79
5. हंस सं. राजेंद्र यादव, (जनवरी, 1997), पृ. 55
6. समकालीन हिंदी उपन्यास – सं. बी. के. अब्दुल जलील, पृ. 238
7. समकालीन भारतीय साहित्य – सं. प्रभाकर श्रोत्रिय, (जन. फर. 1998), पृ. 138
8. हिंदी साहित्य कोश – सं. शंभुनाथ, पृ. 1667
9. समकालीन हिदी उपन्यास – डॉ. सूरज पालीवाल, (भूमिका से)
10. हिंदी उपन्यास का इतिहास – गोपालराय, पृ. 396
11. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 28
12. आजकल – सं. फरहत परबीन (जन. 2015), पृ. 58

हिन्दी कहानी की भाषायी संरचना

डॉ० विकास कुमार
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़

(क) कथ्य

"पिछले वर्षों में जीवन की गति अनपेक्षित रूप से बढ़ी और परिणामस्वरूप बहुत कुछ बदला। इस बदलाव को चीजो के साथ के, आदमी के साथ के, समय के साथ के, हमारे बदलते हुए सम्बन्धों में देखा जा सकता है। बड़ी इकाइयाँ छोटी इकाइयों में बँटती चली गयीं- कभी जोड़ने वाले सूत्र के निर्जीव हो जाने से, कभी दरारें पड़ने से तो कभी उतनी बड़ी इकाइयों को सँभालना असम्भव हो जाने से। एक तरफ तो समूची दुनिया आदमी की पहुँच के दायरे में आती गयी और दूसरी तरफ आदमी अपने दायरे में सिमटता गया। विज्ञान की नयी स्थापनाओं के साथ यथार्थ सापेक्ष हो गया, नतीजतन जटिलतर होते उस जटिल यथार्थ को जीते-जागते मनुष्य के उलझे अनुभव के रूप में खोजने और पाने का प्रयत्न हिन्दी कहानी में भी कई वर्षों से हो रहा है। इसको लेकर ढेरों आंदोलन तथा बहसें चलती रही हैं।"

डॉ० पुष्पपाल सिंह इस आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। उनकी स्वीकारोक्ति है कि "समकालीन कहानी का यथार्थ आज अत्यन्त विस्तृत और विविधवर्णी है। जीवन की कोई समस्या और क्षेत्र नहीं छूटा है, जहाँ रचनाकार की दृष्टि नहीं गयी है। सामाजिक प्रतिबद्धता सामान्य मानव की पक्षधरता तथा इस पक्षधरता से प्रेरित होकर जिन्दगी के विभिन्न मुहानों पर लड़ी जा रही उसकी लड़ाई में सहभागिता आज कहानीकार के कथ्य के प्रमुख सरोकार हैं।"

स्पष्ट है कि समकालीन रचनाकारों ने परम्परागत यथार्थ को अस्वीकृत किया तथा अतियथार्थवादी दृष्टि को अपनाया है। अतः यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि अतियथार्थवाद क्या है? वस्तुतः "यथार्थवाद तथा प्रकृतवाद की भाँति ही अतियथार्थ का जन्म भी फ्रांस में हुआ। इसे प्रथम महायुद्ध की विभीषिका-जनित निराशा का परिणाम माना जा सकता है। अतियथार्थवाद, यथार्थवाद का ही एक अतिवादी रूप है। जिस प्रकार यथार्थ की चरम अभिव्यक्ति प्रकृतवाद से हुई, उसी तरह प्रकृतवाद की चरम परिणति है-अतियथार्थ। निराशा एवं तद्जनित कुंठाओं की विविधरूपिणी अभिव्यक्ति ही इस प्रवृत्ति

का मनोवैज्ञानिक आधार है। फ्रायड के अवचेतन विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया था कि जनसामान्य की अधिकांश इच्छाएँ अनेक आर्थिक एवं सामाजिक कारणवश पूरी नहीं होतींय फलतः वे अचेतन मन में पहुँचकर व्यक्ति के व्यवहार में विकृति एवं असामान्यता उत्पन्न कर देती हैं।" अतियथार्थवादी कहानीकार इन्हीं विकृतियों एवं विद्रूपताओं का प्रकाशन अपनी कहानियों के माध्यम से करता है। स्पष्ट है कि वह सामाजिक या सांस्कृतिक मूल्यों में विश्वास नहीं रखता, ईश्वर पर भी उसकी आस्था नहीं। असंतुलन और असंगतियाँ, वीप्सा और नग्नताएँ ही उसकी कला की मेरुदण्ड हैं। परिणामतः अतियथार्थवादी कहानीकार अपने साहित्य को मानव-जीवन के विकृत एवं घिनौने चित्रों की प्रदर्शनी बना देता है।

कथाकार जयनंदन भी स्वीकार करते हैं कि, "कथा साहित्य के सरोकार समय की चुनौतियों और संक्रमणों से ही तय होते हैं। समय तेजी से बदल रहा है, तदनुरूप कहानियों को भी ढलना और बदलना जरूरी है। मोबाइल, एस.एम.एस., ई-मेल, चौटिंग और खबरों के लाइव प्रसारण का यह युग निश्चित रूप से प्रेमचन्द के युग से काफी अलग हो गया है। कई बार ऐसा लगता है कि मानवीय संवेदना के उत्स और दुख-सुख के कारण भी परिवर्तित हो गये हैं। प्रेमचन्द को जो चीजें विचलित करके कहानी के विषय में ढल जाती थीं। अब वे चीजें समकालीन लेखको के मर्म को उद्वेलित नहीं कर पातीं। इधर कई वर्षों से खालिस गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी पर केन्द्रित कोई कहानी नहीं आयी। जबकि ये तीन पहलू ही सारी समस्याओं की जड़ हैं। देश का ज्यों-ज्यों जी. डी. पी. बढ़ रहा है, गरीब और गरीब हो रहे हैं तथा सारे उद्योगपतियों की आय में दो सौ से चार सौ प्रतिशत की वृद्धि हो गयी है।" अर्थात् अमीरी और गरीबी के बीच की खाई निरन्तर चौड़ी होती जा रही है। आज का तथाकथित नागरिक इन स्थितियों को देखकर विचलित नहीं होता है। उसकी तो स्पष्ट धारणा है कि, "देश अमीरों से चलता है, चूँकि वे टैक्स देते हैं और देश के लिए कपड़ा, लोहा, तेल, गैस आदि का उत्पादन करते हैं। गरीब आदमी देश पर बोझ है, वह देश को देता कुछ नहीं, सिर्फ लेता ही लेता है। स्पष्ट है कि मोबाइल और ई-मेल वाली आज की नयी नस्लें दया, प्रेम और करुणा जैसी अनुभूतियों को बेमानी समझने लगी हैं। वे अब रिटायर हो गये बूढ़े माँ-बाप को छोड़कर विदेश में बस जाने को कोई समस्या नहीं मानते।" तो यह है तथा-कथित समकालीन सजग नागरिक की सोच, जो पूर्णतः आत्म केन्द्रित है। आज के साहित्य में इन बदलते सन्दर्भो की छायाएँ साफ-साफ उभरकर आने लगी हैं। आधुनिक कथाकारों के कथा-साहित्य में इन छायाओं का चित्रण अतियथार्थवादी शैली में हुआ है। उदाहरणार्थ उदय प्रकाश की चर्चित कहानी 'दिल्ली की दीवार' का यह अंश देखा जा सकता है, जिसमें महिला सशक्तिकरण के इस दौर में शहरी महिलाओं की स्थिति का यथातथ्य निरूपण किया गया है, "सोलहवीं सदी के उसी खण्डहर में राजवती की बहन फूलों, आजादपुर सब्जीमण्डी के निकास फाटक पर मूँगफली बेचने वाले जगराज की पत्नी सोमाली और लालकिले के आस-पास चरस बेचने वाले मुश्ताक की फुफेरी बहन सलीमन, जो अब उसकी पत्नी भी थी, रहती थीं। वे तीनों धन्धा करती थीं। सोमाली तो खण्डहर में

ही रहकर, वहाँ अक्सर आ जाने वाले स्मैकिए- तिलक, भूसन और आजाद के लाए हुए ग्राहको को निपटाती थी लेकिन सलीमन और फूलां शाम को रिक्शा लेकर सड़क पर ग्राहको की खोज में घूमती थीं। फूलो कभी-कभी 'पार्टी' में भी रात-रात भर के लिए बाहर जाया करती थी।"

मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' की स्त्री-पात्र बुधिया के समानधर्मा चरित्र वाली फुलिया, उदय प्रकाश की कहानी 'हीरालाल का भूत' की प्रमुख स्त्री-पात्र है। ब्राह्मण विरोधी कथाकार के रूप में कुख्यात उदय प्रकाश इस कहानी में एक ठाकुर को खलनायक की भूमिका में खड़ा करके तथा हीरा और फुलिया जैसे दलित चरित्रों की सृष्टि करके एक साथ अनेक आरोपों से मुक्त होते हैं। उदाहरण ाार्थ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं- "तो घटना यह थी कि उस दिन हीरालाल शाम को ही ठाकुर साहब के घर का सौदा-सामान लेने बाजार चला गया था। दोपहर के बरतन जूठे पड़े थे, इसलिए उन्हें माँजने और बाकी काम निपटाने फुलिया वहाँ आयी हुई थी। शाम सात बजे होंगे कि ठाकुर साहब ने फुलिया को आवाज देकर बुलाया और उसे कागज तथा बहीखाता देकर कहा कि इसे वह पटवारी को दे आये। शायद ठाकुर और पटवारी में पहले ही बात-चीत हो चुकी थी। फुलिया कमरे में पहुँची तो पटवारी ने उसे पकड़ लिया, साँकल भीतर से चढ़ा ली, रेडियो की आवाज खूब ऊँची कर दी और इस तरह हीरालाल की सम्पत्ति का आखिरी कोना, उसकी औरत की आबरू भी जाती रही। आधे घंटे बाद ठाकुर हरपाल सिंह भी उस कमरे में आ गये और फुलिया पटवारी के पलंग पर सिसकती रही। बाद में फुलिया को दोनों ने पाँच-पाँच रुपये दिये।"

"समकालीन कहानी का सार्थक लेखन मानवीय चरित्र तथा स्थितियों की जटिलता को प्रत्यक्ष करता हुआ, जीवन को एक अर्थवत्ता प्रदान करने का प्रयत्न करता है। कहानी की सफलता का मानक यही है कि वह प्रामाणिक रूप से जिन्दगी के बहुआयामी यथार्थ को चित्रित करती हुई, उसे बेहतर बनाने की कोशिश बन सके। जिन्दगी के चरित्र और स्थितियों के चित्रण में ही यह कोशिश दिखायी देनी चाहिए। अतिरिक्त रूप से किसी वाद या विचारधारा से प्रतिबद्ध होकर धर्मोपदेशक या राजनीतिक नेता की शैली में सिद्धान्तो के अनुरूप जीवन को श्रेष्ठतर बनाने का उपदेश कहानीकार (या अन्य किसी भी विधा का रचनाकार) नहीं करता है। मानवीय चरित्र और स्थितियों का जिस लेखकीय दृष्टि में सर्जनात्मक स्तर पर चित्रण होता है, वही दृष्टि जीवन को नयी दृष्टि से देखने का उपक्रम बन जाती है। आज कहानीकार इसी दृष्टि से कथा-रचना में संलग्न है।" आज के कहानीकार भी इसी दृष्टि के अनुकर्त्ता हैं। अपनी पुस्तक 'अपनी उनकी बात' में उदयप्रकाश लिखते हैं कि, "हर कलाकार अपने समय के परिचित यथार्थ के भीतर से ही अपने पात्रों की खोज करता है। अपनी रचना में वह उन्हीं पात्रों को रूपान्तरित करके एक वृहत्तर मानवीय अर्थवत्ता देता है। आप संसार की किसी भी भाषा के किसी भी साहित्य को उठाकर देखिए, सब में यह सच मिलेगा।"

आज की हिन्दी कहानी की भाषा अत्यन्त प्रभावी अभिव्यंजना की नयी-नयी भंगिमाओं से लैस और अत्यन्त समृद्ध है। यह कथन अपने आप में अतिशयोक्तिपूर्ण अथवा समकालीन आलोचना भाषा में 'फतवेबाजी' लग सकता है कि हिन्दी-गद्य की सम्पूर्ण क्षमताओं का पूर्ण विकास कहानी-भाषा में ही प्राप्त होता है। अँगरेजी-गद्य की जिस कथ्यात्मक क्षमता का बखान करते हम अघाते नहीं, वैसी अपूर्व कथ्यात्मक क्षमता हिन्दी की कहानी विधा में ही प्राप्त होती है। इस भाषा ने कहानी के कथ्य के अनुरूप अपने मिजाज को पूरी तरह बदला है। उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों को अपनाकर चलने वाली 'वैष्णवी' और 'शाकाहारी' दृष्टि को पूर्णतः नकारकर एक पूर्ण उन्मुक्त आकाशीभाव मिलता हैय जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से अभिव्यक्ति को शब्द और बिम्ब प्रदान करती है। हिन्दी कहानी की इस खुली दृष्टि का सर्वप्रमुख कारण यह है कि भाषा अनुभव को व्यक्त कर देने मात्र का साधन भर नहीं है, अपितु वह सर्जनात्मक प्रक्रिया का स्वयं एक अंग है। इसीलिए उसे बहुत दूर तक कथ्य से नहीं अलगाया जा सकता।

यदि हिन्दी कहानी की भाषा को साठ के दशक से पूर्व की भाषा से मिलाकर देखें तो यह सहज ही स्पष्ट हो जायेगा कि आज कहानी-भाषा विकास के कितने सोपानों को प्राप्तकर आगे बढ़ आयी है। आज वह जिस रूप में मानव-मन के रोयें-रेशे को पूरी तरह उघाड़कर अत्यन्त सूक्ष्म और तलस्पर्शी रूप में अभिव्यक्ति कर सकती है, वह उसकी बहुत बड़ी और गौरवपूर्ण उपलब्धि है। आज किसी भी नये-से-नये अच्छे कथाकार की कोई सार्थक रचना उठा लीजिए, उसकी अभिव्यक्ति की ताजगी और टटकापन सहज ही बाँधता है।

वस्तुतः भाषा कथ्य के अनुरूप ही स्वरूप ग्रहण करती है और वह सर्जनात्मक प्रक्रिया का एक अविभाज्य अंग है। हिन्दी कहानी ने जिस जीवन-यथार्थ को अपना कथ्य बनाया या यथार्थ के जिस रूप की अभिव्यक्ति से अपने को प्रतिबद्ध कियाय कहानी भाषा भी उसी मार्ग की अनुगामिनी बनी। यथार्थ से रू-ब-रू होती कहानी की भाषा में रोमानी, काल्पनिकता का ऐंद्रजालिक रूप और उससे अनुस्यूत उपमान, बिम्ब, प्रतीक-विधान या अतिशय भावुकतापूर्ण आग्रह अब समाप्त प्राय हैं। आज कहानी की भाषा अपनी सरलता, सहजता और अनगढ़ता में ही नयी अर्थ-छवियाँ भरती है। जिस प्रकार कहानी आज जीवन के अत्यधिक निकट है, उसी प्रकार कहानी-भाषा भी जीवन की निकटता में ही अपना साहित्यिक आभिजात्य स्थापित कर सकी है। इसीलिए कहानी-भाषा में आज एक विशेष जीवनधर्मी गंध अनुभूत होती है। यहाँ यह स्पष्ट करना अधिक विषयांतर नहीं है कि हिन्दी कहानी की समीक्षा-भाषा को भी कहानी-भाषा के अनुरूप ही अपने को रूपान्तरित और विकसित करना श्रेयष्कर होगा। यद्यपि भाषा-विकास और समृद्धि में 'इति' जैसी स्थिति नहीं हो सकती, किन्तु हमें यह मानने में किंचित् भी संकोच नहीं है कि हिन्दी कहानी ने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के तीन दशको में गद्य की शक्ति का चरम अथवा अपूर्व विकास किया है। यह समस्त भाषिक प्रयोगों की गौरवपूर्ण

उपलब्धि है। यदि हम अपने इस कथन को समकालीन हिन्दी कहानी के गौरवपूर्ण स्तंभों और चर्चित कहानीकारों की कहानी-भाषा के परिप्रेक्ष्य में विवेचित करने का प्रयास करें तो इसकी सत्यता सहज ही प्रमाणित हो जायेगी।

कहानी की भाषा के सम्बन्ध में उदयप्रकाश की मान्यता है कि, "हर अच्छी कहानी के हर वाक्य में उस समूची कहानी की रूपरेखा और सम्भावना पहले से ही मौजूद रहती है। हर अच्छी कहानी अपनी समग्रता में एक सम्पूर्ण वाक्य बनाती है और इसी वाक्य के निर्माण के लिए कथाकार कहानी के विन्यास में असंख्य अन्य वाक्यों का इस्तेमाल करता है। इन समस्त वाक्यों का अपना अलग अस्तित्व, संरचना और अर्थ होते हुए भी, उस महावाक्य (अर्थात् कहानी) से पृथक् अपनी कोई अस्मिता नहीं होती। ये असंख्य वाक्य उसी एक महावाक्य के लिए अपने स्वतंत्र अस्तित्व को उत्सर्जित करते हैं। इसीलिए जब उत्तर संरचनावादी आलोचक यह कहते हैं कि कोई भी भाषिक कला अपनी समग्रता में वस्तुतः एक वाक्य होती है, तो वह गलत नहीं है। यानी सीधी-सी बात यह कि जितना महत्त्वपूर्ण कहानी का कथ्य, उसका सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक पक्ष होता है, उससे कम महत्त्वपूर्ण उसका भाषिक विन्यास नहीं होता, जिसकी हिन्दी कहानी और कथा आलोचना में निरन्तर अवहेलना हुई है। ज्यादातर हिन्दी आलोचना तो दुर्दात वाक्य-विन्यासों का दयनीय कबाड़खाना ही है।"

प्रख्यात एवं प्रखर कथा-आलोचक बलराम भी रचना में भाषा की महत्ता को स्वीकार करते हैं। उन्होंने कृतिकार की तुलना बढ़ई से की है। उन्हीं के शब्दों में, "एक अच्छी कहानी की रचना के लिए भाषा, शिल्प और कथ्य पर समान रूप से ध्यान देना जरूरी है, क्योंकि अंततः कृति किसी बढ़ई के अच्छे या बुरे निर्माण-सी ही तो है। इस सम्बन्ध में नोबेल पुरस्कार विजेता कथाकार गैब्रियल गारसे मारकेस की वह बात याद आ रही है, जो उन्होंने 'द पेरिस रिव्यू' के लिए साक्षात्कार देते हुए पीटर एच. स्टोन से कही थी- 'साहित्य बढ़ईगीरी के अलावा और क्या है... कुछ लिखना मेज बनाने जैसा ही मुश्किल काम है। दोनों में ही आप यथार्थ का सामना करते हैं। दोनों में ही ट्रिक है और तकनीक भी।' मारकेस की इस लेखकीय बढ़ईगीरी के एक औजार 'भाषा' के सन्दर्भ में डॉ० रामविलास शर्मा का यह कथन कितना सटीक है-"भाषा तो लेखक का बसूला है। जो लेखक सही ढंग से बसूला चलाना नहीं जानता, वह अच्छी मेज कैसे बना सकता है।"

भाषा बनावटी भी नहीं होनी चाहिएय क्योंकि "बनावटी भाषा से आयाम नहीं खुलते, अर्थों की धक्का परेड होती है। वह भाषा थिगली की तरह चिपकायी हुई लगती है। मेरी समझ से किसी भी लेखक की निजता और पहचान में भाषा मुख्य रोल अदा करती हैय भाषा तो आयाम खोलती चलती है। और सन्दर्भ चाहे भाषा का हो या कथ्य का, वह जनसंपर्क से ही उपलब्ध होता है। एक लेखक की हैसियत से उस भाषा और कथ्य को सिर्फ संस्कार देने का काम लेखक को करना पड़ता है और

जो लेखक ऐसा नहीं करते लेखकीय धर्म से च्युत होकर रचना को हल्की कर डालते हैं और उनकी रचनाओं से जनमानस में कोई खास प्रतिक्रिया नहीं होती।"

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि आधुनिक कथाकार भाषा के प्रति अत्यन्त सजग है। उसके सत्प्रयासों से "शिल्प के साथ-साथ समकालीन कहानी में भाषा को भी एक नई तराश और गद्य की नई लय प्राप्त हुई। गद्य-भाषा की सहजता में जीवन-धर्मी गंध लिये कितनी अर्थ-क्षमता हो सकती है, वर्तमान कहानी इसका प्रमाण है। प्रयोग में आ रहे शब्दों को गद्य की लय के अनुसार अर्थ-संगति देने के सुन्दर प्रयास ने भाषा को अपूर्व शक्तिमत्ता प्रदान की है। समकालीन कहानीकार भाषा प्रयोग के प्रति अत्यन्त सजग और सचेत है। समग्रतः समकालीन हिन्दी कहानी आज साहित्य की सर्वाधिक सशक्त और समादृत विधा है। कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से उसने नूतन आयाम छुए हैं।"

(ख) भाषा

वर्तमान सदी में कहानी, हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधा बन गयी है, क्योंकि आज इस विधा के अन्तर्गत जनता के वैयक्तिक एवं सामूहिक, दोनों परिवेशगत पहलुओं एवं घटनाओं को रचनाकारों द्वारा उजागर किया जा रहा है। इस समय कहानी में मनुष्य के यथार्थ-जीवन का अंकन दृष्टिगोचर हो रहा है। अधिकतर रचनाकार भुक्तभोगी हैं जिसके कारण उनकी कहानियों में जीवन्तता दिखाई देती है। आज के कहानीकारों की रचना में आम जनता का शोषण, बलात्कार, जीवन संघर्ष, अपनी अस्मिता को तलाशने वाले मनुष्य की व्यथा जैसी विविध घटनाओं को अपनी रचना का विषय बनाया है। साथ ही इस समय की कहानियों की भाषा में आक्रोश, व्यंग्यात्मकता, करुणा का स्वर, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, प्रतीक और बिम्बात्मकता आदि आती है। शिल्प की दृष्टि से देखें तो ये कहानियाँ वर्णनात्मक, मिथकीय, व्यंग्यात्मक और फैन्टेसी मूलक भी होती हैं। डॉ० नीरज शर्मा लिखते हैं- "इस दौर के कहानीकारों ने भ्रष्टाचार, प्रशासन, पुलिस, आतंकवाद, राजनीतिक स्थितियों, गाँवों, कस्बों, नगरों, महानगरों का विसंगतिपूर्ण जीवन, आम आदमी का संघर्ष, साम्प्रदायिक द्वेष, जातिगत भेदभाव, वर्गगत विषमता जैसे अनेकानेक सामाजिक समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया। इसके लिए वे स्पष्ट भाषा को आधार बनाते हैं। स्पष्ट एवं खुलेपन की दृष्टि के चलते ही उसने भाषा को प्रायः सहज रखने की कोशिश की, जिसके फलस्वरूप वह स्वाभाविक बोलचाल की भाषा से जुड़ता गया। प्रादेशिक शब्दों, ग्रामीण शब्दों, गीतो आदि का प्रयोग इसी का परिणाम है।" इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान सदी के मानवीय सम्बन्धों में हो रही संवेदनाओं, संघर्षों आदि को उजागर करने के लिए रचनाकार सहज भाषा का प्रयोग करने में जुटे हैं।

भाषा मानव के लिए भावाभिव्यक्ति का प्रमुख औजार है। साहित्य में स्पष्ट, सरल या सहज और सशक्त भाषा का प्रयोग पाठको को प्रभावित करता है। अपनी रचनाओं को प्रभावित करने के लिए रचनाकार कहानियों में बिम्बों, लोकोक्तियों, कहावत, मुहावरों, रूप्को और लोकजीवन के गान आदि का सहारा लेते हैं। भाषा के सम्बन्ध में डॉ० नीरज शर्मा का कथन है– "विविधता एवं व्यापकता से युक्त इस दौर की कहानियों की भाषा अर्थक्षमता से परिपूर्ण है। इसकी खास विशेषता सम्प्रेषणीयता है। अर्थात् वह सहज संप्रेष्य है। इस दौर में कहानी की भाषा में कहानी का कथ्य तथा कहानीकार की संवेदना में अलगाव नहीं। शायद इसी कारण वैविध्यपूर्ण जटिल, गम्भीर तथा बहुआयामी कथ्य भी सशक्त रूप में प्रस्तुत होता है।" आज के दौर की कहानियाँ भाषा की दृष्टि से पाठकों को प्रभावित करने वाली हैं। इक्कीसवीं सदी के कहानीकारों ने आम आदमी की भाषा को अपनी रचनाओं में प्रमुखता दी है। जनसाधारण की भाषा में उनके सुख-दु:ख, संघर्ष, आक्रोश, संत्रास, व्यंग्यात्मकता आदि की भरमार होती है। इस दौर की कहानियों में कहानीकार जन साधारण की बोलचाल की भाषा का प्रयोग करके साधारण जन जीवन को पाठको के सम्मुख प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

शब्द योजना में नवाचार

वर्तमान सदी की हिन्दी कहानियों में अंग्रेजी और अरबी शब्दों का प्रयोग, आंचलिक और आदिवासी शब्दावली का प्रचुर प्रयोग हुआ है। भाषा का अध्ययन करते समय इन शब्दों पर अध्ययन करना समीचीन है। इस दौर की कहानियों में अंग्रेजी शब्दों का बोलबाला है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'कहाँ जाओगे बाबा' में पवरकट, गैस एजेंसी, शॉपिंग सेन्टर, फैक्टरी, फर्टिलाइजर कम्पनी, कान्स्ट्रक्शन, कूलर, एयरकंडीशनर, रिटायर, गैसरिलीस आदि बहुत सारे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग है। इसी प्रकार कैलाश बनवासी की कहानी 'एक गाँव फुलझर' में भी लाइसेंस, आर्डर, इम्पोर्टेड, वर्कर, प्राइवेटाइजेशन जैसे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। इस दौर की कहानियों में अरबी शब्दों के प्रयोग का नवाचार हुआ। कैलाश बनवासी की कहानी 'बाजार में रामधन' में इत्मीनान, दलाली, वाजिब, मुताबिक और 'एक गाँव फुलझर' में मशगूल, झारत, हुकुम, आलीशान, तहलका आदि शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। नये दौर की कहानियों में फारसी के शब्दों को इस्तेमाल धड़ल्ले से हो रहा है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'कहाँ जाओगे बाबा' नामक कहानी में हरगिज, तख्ती, जल्दबाजी, दरवाजा और कैलाश बनवासी की कहानी 'बाजार में रामधन' में रौं, गुमान, निगरानी जैसे शब्दों का प्रयोग बखूबी हुआ है।

वर्तमान सदी की कहानियों में जमीदारों, पूँजीपतियों या कुटिल राजनीतिज्ञों, भ्रष्ट न्याय व्यवस्था और भ्रष्ट कर्मचारियों द्वारा आम जनता के साथ शोषण एवं दुख-दर्द की वजह से लोगों में अपने अस्तित्व के प्रति चेतना जागृत होकर अन्याय के खिलाफ आक्रोश शुरू होते हैं। मोहनदास नैमिशराय

की कहानी 'अपना गाँव' में ठाकुर कबूतरी के साथ जुल्म करता है और सम्पत इस जुल्म के खिलाफ अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहता है- "संपत आक्रोश के मारे उबल पड़ा, "भइया, ठाकुर की पहुँच चीफ मिनिस्टर तक हो या प्राइम मिनिस्टर तक। हम पर जुल्म हुआ है और उसकी रिपोर्ट पुलिस में लिखना जरूरी है।" कहानी में सम्पत जुल्म के खिलाफ अपने आक्रोश भरी भाषा का प्रयोग करते हैं। रणेन्द्र की कहानी 'रात बाकी' में सरकार द्वारा आदिवासियों की भूमि अधिग्रहण करके बाँध बनवाने की प्रवृत्ति के खिलाफ आदिवासी लोग अपना आक्रोश इस तरह व्यक्त करते हैं- "अब ई बाँध बन्द, काम बन्द। ऐसे कैसे चलेगा भाई। ई जोर जबरदस्ती है। प्रशासन हाथ पर हाथ रखकर थोड़े बैठ रहेगा।" इसी प्रकार संजीव की कहानी 'अपराध' में सचिन भ्रष्ट न्याय व्यवस्था पर अपना आक्रोश व्यक्त करता है- "मुझे इस पूँजीवादी, प्रतिक्रियावादी, न्याय-व्यवस्था में विश्वास नहीं है। आम जनता भी जिसे न्याय का मन्दिर कहती है, वह लुटेरों पण्डों और जूताचोरों से भरा पड़ा है।" इस प्रकार आज कहानियों में अत्याचार से पीड़ित लोगों की आक्रोश भरी भाषा का प्रयोग नवाचारी कहानीकारों ने प्रयुक्त किया है।

भाषा में व्यंग्य का पुट लाने से उसकी अभिव्यक्ति सशक्त बन जाती है। व्यंग्य युक्त भाषा के माध्यम से कहानीकार अकथ्य को भी कह डालते हैं। अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्यात्मकता एक सशक्त हथियार का काम करती है। हेमलता महिश्वर की कहानी 'कर का मनका डारी के' में परिवार परामर्श को लेकर बातचीत हो रही थी जहाँ पर लेखिका पहुँचती है और कौसर से पूछती है तो वह जवाब देता है- 'उसने मुझसे अब जाकर पूछा, दी! आप कम्फर्टेबल तो हैं ना।' "अब मैं क्या बोलूँ? ओखली में सर खुद रखवा दिया और अब पूछ रही हो।" मैंने भी लपककर कहा।" कहानीकार संजीव की 'टीस' कहानी में शिबु काका नामक आदिवासी संपेरा मन्दिर के पुजारी के प्रति व्यंग्यात्मक बातें कहता है। वह कहता है- "मन्दिर का पुजारी पंजानन भट्टाचार्य। जब वो त्रिपुट लगा के, पूजा के लिए आया, जनाना लोग को घूरता तो लगा कि गोखुर छाप वाला नाग फन फुला के घूर रहा है। मन्तर किटकिटते बखत हम आदिवासी लोग को देखेगा तो कुकारेगा- भागो साला लोग, जाके खीस्तान बन जाओ, इहाँ काहे आता! साब, देख लेना उसको, अगर साँप कापड़ाया (डँसा) तो साँपइ मर जाएगा, वो नहीं मरेगा।" व्यंग्यात्मक भाषा के प्रयोग से पाठकों की रुचि कहानी को पढ़ने में बढ़ जाती है।

आज के कहानीकार अपनी कहानियाँ में लोकगीतो के माध्यम से अकथ्य को भी कथ्य बनाकर कहने में सफल रहे हैं। इन गीतां में लोक-जीवन की व्यथा, सुख-दुख, प्रेम आदि अन्तर्निहित होते हैं। लोक गीत लोक-जीवन की आत्मा हैं। मेहरुन्निसा परवेज की कहानी 'जंगली हिरणी' में आदिवासी लड़की लच्छो का झूम-झूम कर गाना देखें-

"बाट चो आँवा ने मंजुर सोए से, मारी रोसोना
कुम, कुम, कुम, मेछा एएसे।

लच्छो की सुरीली आवाज हवा में गूँजने लगती है। तबले पर जोर की थाप पड़ते ही उसके पैर जोर-जोर से थिरकने लगते हैं-

मेघा एउसे-मारी रोसोना
तुचो गोढ़ के कोन सुने से।।
कोन सुने से-मारी रोसोना
बलते बला सरते सरोबे।।"

'आरोहण' नामक कहानी में सजीवन पहाड़ी इलाकां में गाये जाने वाले लोकगीतो की ओर इशाना किया है-

"ऊँची-नीची झाँड़ियों मा,
हे कुहेड़ी ना लाग तूँखखख!"

इस गीत में जीवन और मृत्यु से परे एक अमूर्त लोक की परिकल्पना की गयी है-

"ऊँची-नीची झाँड़ियों मा
हे हिलाँस ना बस तूँखखख!"

"रफीक भाई को समझाइए' शीर्षक कहानी में रणेन्द्र के एक शोक-संवेदना से भरे लोकगीत को देखें-

"इक गदाए-राह को नाहक न छोड़
जा फकीरों से मजाक अच्छा नहीं।"

अस्तु, लोकगीतों ने लोकजीवन से जुड़ी संवेदनाओं को स्वर प्रदान किया है। जिसे पढ़कर अथवा सुनकर मन विह्वल हो जाता है।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ

नये दौर की कहानियों में मुहावरे एवं लोकोक्तियों की भरमार है। इन लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग से पाठक कहानी को पढ़कर लोकजीवन की गहराई में उतर जाते हैं। संजीव, उदय प्रकाश, ओमप्रकाश वाल्मीकी, मोहनदास नैमिशराय जैसे कहानीकारों ने अपनी कहानियां में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग करके अपना रचना का अर्थवान एवं संश्लिष्ठ बनाते हैं।

कैलाश बनवासी ने अपनी कहानी 'बाजार में रामधन' में रूखा सूखा, न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी, सिर तो जैसे भूत सवार है[36] जैसे लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग किया है। 'साहूकार की

मछली' कहानी में कोमल ने मूर्ख बनाने के लिए 'उल्लू बनाना' मुहावरे का प्रयोग किया है। ऐसी न जाने कितनी नवाचारी कहानियाँ हैं जिनमें मुहावरे एवं लोकोक्तियों का नमूना हम देख सकते हैं। इन मुहावरे एवं लोकोक्तियों से रचनाकार अकथ्य को भी कथ्य का रूप दे देते हैं।

प्रतीकात्मकता

नये दौर की कहानियों में अपने शीर्षको में और कहानी के विस्तार में प्रतीकात्मकता को लेकर भाषा को संश्लिष्ट एवं अर्थवान बनाकर उन्हें समयानुकूल बना दिया है। ये कहानीकारों अपनी कहानी के शीर्षक में प्रतीकात्मकता का प्रयोग करते हैं। यथा– ओमप्रकाश वाल्मीकी की 'घुसपैठिए', जयप्रकाश कर्दम की 'नो बार', श्योराज सिंह बेचैन की 'अस्थियों की अक्षर', प्रहलादचन्द्र दास की 'लटकी हुई शर्त', संजीव की 'ऑपरेशन जोनाकी', 'टीस', वाल्टर भेंगरा तरुण की "काला पानी', केदारप्रसाद मीणा की 'अवत-अवतड़ी' आदि कहानियों के शीर्षक प्रतीकात्मक हैं। इन प्रतीकात्मकता शीर्षको के अर्थ नये प्रतीको के द्वारा स्पष्ट हो जाते हैं। नये कहानीकार अपनी कहानी का विस्तार भी प्रतीको के सहारे करते हैं। संजीवन की कहानी 'टीस' में प्रतीको के साथ कथा का विस्तार होते हुए देखा जा सकता है– "रोड पर जा रहा है एक नम्बर का अजगर मुखिया पिनाकी महता। जितना सरकारी पैसा और सामान गाँव के लिए मिलता है, सब साला के पेट में जाता। पीछे-पीछे जा रहा है 'उसका' लड़की पत्तो। ढेमना (धामिन) है ढेमना। बड़ा-बड़ा बी.डी.ओ., एस.डी.ओ, कोलरो मैनेजर, ठीकेदार का पा (पैर) बाँध के दूध पी जाता। कपड़ा और मूदीखाना का दुकान वाला सेठ लोग राजस्थान का पीवणा नाग है, सुबेदार रामबली राय गंगा के किनारे का चित्ती (करैत) है तो मुनीम जगेसर सिन्हा 'बोड़ा' साँप है। सूद का विष धीरे-धीरे असर और मुनीम के गोलमाल का जहर छौ मास बाद (संपरों के अनुसार करैत का विष धीरे-धीरे तेजी पकड़ता है और बोड़ा यानी बहरा साँप का छह महीने बाद) चन्द्र बोड़ा, जल बोड़ा, धूल बोड़ा- कितना सरकार बोड़ा गाँ (गाँव) में घूमता। उड़ीसा का शंखचूड़ नाग देखना है तो उड़िया फारेस्ट अफसर 'दास' को देख लो।"[28] उपर्युक्त उद्धरण में कहानीकार ने गाँव की स्थिति एवं गरीबी में भी जनता का खून चूसने वाले लोगों को उजागर किया है। विभिन्न प्रकार के विषैले साँपों को प्रतीक रूप में लेकर उनके चरित्र का उद्घाटन किया है। स्पष्ट है कि प्रतीक के माध्यम से कहानीकार कथा विस्तार के साथ ही अर्थ विस्तार भी करते हैं।

(ग) बिम्ब

भाषा में यथार्थ का चित्रात्मक प्रस्तुतिकरण बिम्ब कहलाता है। नये दौर के कहानीकार मानव मन की आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य को उद्घाटित करने के लिए या ऐसा कहें कि उनके सुख-दुख जैसे

मनोभावों को स्पष्ट करने के लिए बिम्बों का प्रयोग करते हैं। इसके साथ ही रचनाकार परिस्थिति, परिवेश या किसी वस्तु के चित्रण के लिए भी बिम्बों का प्रयोग करते हैं।

'कयामत के दिन उर्फ कब्र से बाहर' शीर्षक कहानी में जया जादवानी बचपन के बिम्ब उकेरते हुए लिखते हैं- "बहुत साल पहले मेरा बचपन मरा नहीं था, मेरे दोनों भाई इसी तरह सीटियाँ बजाते हुए फुटबाल खेलने अपनी-अपनी साइकिलों पर घर से निकला करते थे। उनके पीछे उसी तरह भागने को लालायित मैं जब उसी तरह घर से सीटी बजाते हुए निकलती तो वे बड़ी क्रूरता से पीड़े लौटते, दोनों तरफ से मेरी दोनों बाँहो को पकड़कर घसीटकर अन्दर कमरे में ले जाते और बाहर कर दरवाजा बन्द कर देते।" नव उपनिवेशवाद का यथार्थ चित्रण करते हुए कहानीकार राजकुमार गौतम अपनी कहानी 'कब्र' में लिखते हैं- "सपने जो बाजार के शो-केसों में दमकते रहते हैं : कुछ इलेक्ट्रानिक्स सामान, कुछ नकदी, कुछ पुरुषत्व और भोग... बस।" बिम्बों के माध्यम से शहरों का चित्रण करते हुए स्वयं प्रकाश अपनी कहानी 'कहाँ जाओगे बाबा में' लिखते हैं- "आटोरिक्शा बाईं तरफ मुड़ गया। उस रास्ते में फैक्टरियाँ ही फैक्टरियाँ थी, इतने कारखाने, इतने बोर्ड, इतने होर्डिंग, सड़क पर इतने वाहन, इतना शोर इतना प्रदूषण, इतना विकास की आत्मा की सारी प्रफुल्लता ट्रक के पहिये के नीचे आ गये किसी नाजुक फूल की तरह कुचल गई।" स्वयं प्रकाश की उपर्युक्त कहानी में बिम्बों का प्रयोग रात और सुबह के लिए किया गया है। इस प्रकार कहानीकार बिम्बों के माध्यम से गरीबों की पीड़ा, संत्रास आदि का चित्रण करता है।

स्पष्ट है कि आज के नये कहानीकारों ने अभिव्यक्ति के लिए युगीन भाषा का प्रयोग किया है जो आम जनमानस की संवेदना, सुख-दुःख, पीड़ा-संत्रास आदि अनुभूतियों का सम्प्रेषण सार्थक और संश्लिष्ट तरीके से करते हैं।

(घ) शैली

नये युग की हिन्दी कहानियाँ सांस्कृतिक दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन ला रही हैं। इनमें टूटते जीवन मूल्य, राजनीतिक परिवर्तन, उपभोक्ता संस्कृति का प्रभाव, भ्रष्टाचार आदि को विस्तार दे देखा जा सकता है। नवाचारी कहानियों में आम जनमानस की संवेदना की अभिव्यक्ति भी देखी जा सकती है। परिवर्तित होते जीवन परिवेश और मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए कहानीकारों ने कहानी के शिल्प में भी परिवर्तन किया है। कहानी शिल्प की व्याख्या करते हुए डॉ० नीरज शर्मा लिखते हैं- "शिल्प का तात्पर्य है- बुनावट/बनावट। वस्तुतः किसी वस्तु या रचना के निर्माण में जो पद्धति/प्रक्रिया अपनाई जाती है, उसे ही शिल्प कहते हैं।"[44] स्पष्ट है कि नये दौर की कहानियों में कहानीकारों ने

नयी प्रविधि या प्रक्रिया को अपनाया है। रचनाकार अपनी रचना के समय जिस विधि का प्रयोग करता है उसकी कलात्मकता को शिल्प कहा जाता है।

1. वर्णनात्मकता

कहानीकार की रचना में वर्णनात्मकता होने पर उसमे प्रामाणिकता, स्पष्टता एवं यथार्थ का प्रवाह तीव्र होता है। 'मैंगोसिल' शीर्षक कहानी में उदय प्रकाश गलियों का वर्णन करते हुए लिखते हैं- "जहाँगीरपुरी में एक-दूसरे के साथ सटकर खड़े बेसंध मकानों की पांत के बीच से संकरी सड़कें या गलियाँ निकली हुई हैं। मुश्किल से ग्यारह-बाहर फुट चौड़ी। कहीं-कहीं तो यह चौड़ाई छह-आठ फुट से अधिक नहीं है। वहाँ आप सिर्फ पैदल या फिर साइकिल से इधर-उधर टकराने से बचते हुए घुस सकते हैं। गर्मियों में यहाँ रहे वाले इन्हीं सँकरी गलियों में बाहर खाट डालकर सोते हैं, क्योंकि राजधानी की नगरपालिका बिजली और पानी की सबसे ज्यादा कटौती ऐसी ही बस्तियों में किया करती है। अवाहें, यौन, दंगे, जादू-टोना, अपराध और बीमारियाँ सबसे ज्यादा ऐसी ही बस्तियों में फैलती हैं। इन गलियों में पानी की निकासी के लिए जो नालियाँ बनायी गई हैं, वे ऊपर से खुली हैं।" वर्णनात्मक शैली का प्रयोग करने से पाठको पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

'प्रायश्चित्त' नामक कहानी में डॉ० मंजु ज्योत्स्ना आदिवासियों की शादी-ब्याह का वर्णन करते हुए लिखती हैं- "हफते भर हंगामा। ये जाति कू गोड़इत हैं। शादी में खर्च ही कितना! हल्दी रंग की साड़ी वह भी लाल पाड़ की कोरी साड़ी को हल्दी में रंग दिया, रेशमी लाल चूड़ी और सिन्दूर, दुल्हे की हल्दी से रंगी धोती और गुलाबी रंग के रंगी कमीज! न दान, न दहेज। आम की पत्तियों का छाजन, जिसके चार खम्भे जिनमें बँधे हैं लाउडस्पीकर और हरेक में अलग-अलग फिल्मी गीत बड़ी तेज आवाज में बज रहे हैं। यह उनके प्रगतिशील होने और सम्पन्न होने का प्रमाण था। इसके साथ ही नाच-गाना, अनवरत अथक। खुशी मनाने का निराला ढंग।"[46] इस कहानी की वर्णन पद्धति बहुत ही सफल एवं प्रवाहपूर्ण है।

2. किस्सागोई पद्धति

जब किसी रचनाकार द्वारा अपनी कहानी के कहने की शैली में परिवर्तन किया जाता है तो उस प्रक्रिया को किस्सागोई कहा जाता है। कहानीकार जैसा देखता है, सोचता है उसका वर्णन वह हू-ब-हू उसी तरह करता है। रचना की यह पद्धति अधिक सहज एवं सम्प्रेषणीय होती है। 'मैंगोसिल' कहानी में उदय प्रकाश लिखते हैं- "एक रात लगभग दो बजे शोभा की आँख अचानक खुल गई उसने देखा कि सूरी धीरे-धीरे कराह रहा है। उसके माथे पर फिर बहुत सारी पीड़ा की लकीरें थी। बार-बार बनती

और मिटती हुई लकीरें। बच्चा गहरी बेचैनी से अकेला चुपचाप जूझ रहा था। दर्द को सहता हुआ। दूसरा बच्चा होता तो जोरों से रोता। शोभा ने देखा कि सूरी दोनों हाथां से बार-बार अपने सिर को पकड़ने की कोशिश कर रहा था।" तरुण की कहानी 'कालापानी' का एक उदाहरण देखें- "लदुरा मुंडा भी उन मजदूरों में शामिल हो गया था। उसके साथ दस साल का मांगु भी अण्डमान चला आया। यहाँ के जंगलों को देखकर माँगु बहुत खुश हुआ था। वह गिलहरियों और चिड़ियों का शिकार करने लगा था। उसका बाप लदुरा अन्य लोगों के साथ पेड़ काटने का काम करने लगा। छोटानागपुर में मजदूरी के नाम पर मात्र दो आना ही दिहाड़ी मिलती थी। यहाँ उसे चार आना हर रोज मिलने लगी।" किस्सागोई पद्धति पाठक को आगे कहानी पढ़ने के लिए विवश कर देती है।

3. बयान शैली

बयान शैली में कहानीकार अपने अनुभव या भोगे हुए आम जनमानस की पीड़ा का रू-ब-रू प्रस्तुतिकरण करता है। किसी घटना का वर्णन जब रचनाकार करता है तो पाठक को ऐसा लगता है कि वह उस घटना का स्वयं द्रष्टा है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'कहाँ जाओगे बाबा' से इस पद्धति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है- "पन्द्रह दिन होते न होते मास्टर साहब का जी उचाट हो गया। पन्द्रह दिनों में उन्होंने गोकुल नगर ही नहीं, आस-पास का पूरा इलाका अच्छी तरह घूमकर देख लिया। कहने को वहाँ सब था- स्कूल, सड़कें, गैस एजेंसी, शॉपिंग सेण्टर, अस्पताल, यातायात के साधन, मन्दिर, कम्युनिटर सेंटर... यहाँ तक कि पास ही एक शानदार स्टेडियम भी बना हुआ था।" पाठक के मन को विचलित कर देने वाली एक ऐसी घटना का वर्णन ओम प्रकाश वाल्मीकी ने अपनी कहानी 'शवयात्रा' में किया है, द्रष्टव्य है- "कल्लन चाहता था कि शाम होने से पहले ही दाह-संस्कार हो जाए। सलोनी के शप को देखकर सरोज बार-बार बेहोश हो रही थी। समस्या थी लकड़ियों की। दाह-संस्कार के लिए लकड़ियाँ उसके पास नहीं थीं। सुरजा और सन्तो लकड़ियों का इन्तजाम करने के लिए निकल पड़े थे। उन्होंने चमारों कू दरवाजो पर जाकर गुहार लगाई थी। लेकिन कोई भी मदद करने को तैयार नहीं था।" बयान शैली का प्रयोग करके रचनाकार आम आदमी के पीड़ा को उसके सूक्ष्म मनोभावों के साथ प्रस्तुत करते हैं जिससे पाठक को लगता है कि वह घटना को प्रत्यक्ष देख रहा है।

मिथकीय शैली

मिथकीय परिकल्पना के विस्तार से रचनाकार की रचना अधिक संश्लिष्ट और सशक्त बन जाती है। मिथकीय शैली का प्रयोग हरिराम मीणा की कहानी 'ढाव' से देखें- "पंडित अड़ गया यह कहता हुआ कि- या काम पैलां करतो अब तो गऊ दान पंडित कू ई देणो पड़ेगो। या इस लिहयों के थारों

बाप बैतरणी के ओल्यां दाह की दाह में ई अटक्यो पड़्यो है। अर तू जाण ले बा की काई दसा हो री है। राद्य अर लोही की नंदी है बा। बड़ा मंगरमच्छ, काचुआ, स्यांप और न जाणे किस्या किस्या जीव-जिन्यावर च्यारूं मेरे खाबा कू कोनी करे। अब तू जाणे अर थारा ये पंच-पटेल।"[51] केदार प्रसाद मीणा की कहानी 'अवत-अवतड़ी' में मिथकीय प्रयोग का अवलोकन करें- "पाँच बच्चे तो खुद के खा गई दुनिया के खा गई वो अलग और ढोर-ढंगर की तो गिनती ही नहीं, कितने खाए। फिर भी इनसे कोई काचान का पेट भरे है। काचान के भूख लगी, खाने को नहीं मिला तो क्या करते, डायन को खा गए फंद मिटा जी।"

रणेन्द्र की कहानी 'वह बस धूल थी' में मिथकीय शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है- "ससुर खटिया पर लदवाकर पहुँचा गये थे। धमका भी गये थे कि उसके हीरे जैसे बेटे को खा गई ई डायन! दुबारा दिखी तो उनसे बुरा कोई नहीं होगा।" मिथकीय शैली के प्रयोग से रचनाकार की कहानी को पढ़ते हुए पाठक अधिक प्रभावित होता है।

5. फंतासी शैली

फंतासी के सम्बन्ध में डॉ० नीरज शर्मा कहते हैं- "फैंटेसी निर्माण का सम्बन्ध सौन्दर्यानुभव से है अर्थात् जीवन अनुभव ही फैंटेसी का जन्मदाता है और अनुभव की शब्दबद्ध या चित्रित अभिव्यक्ति "फैंटेसी है।" नये युग का कहानीकार अपने जीवन अनुभवों को कल्पना के माध्यम से प्रस्तुत करने में सफल रहा है। फंतासी में मानव के सम्भाव्य की सर्जन शक्ति विद्यमान है। उदय प्रकाश की कहानियों से एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं। कहानी 'तिरिछ' की बानगी देखें- "उन लोगों का कहना था कि बहुत से कीड़े-मकोड़े और जीव-जन्तु रात में चन्द्रमा की रोशनी में दोबारा जी उठते हैं। चाँदनी में जो ओस और शीत होती है उसमें अमृत होता है और कई बार ऐसा देखा गया है कि जिस सांप को मरा हुआ समझकर रात में यों ही फेंक दिया जाता है, फिर वह हमेशा बदला लेने की ताक में रहता है।" 'मैंगोसिल' का उदाहरण देखें- "अपनी आँखें बन्द करके दिक और काल पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित करें, गहरी साँस लेकर आकाशस्थित सूर्य को अपने फेफेड़ों के भीतर स्थिर करें, क्योंकि सूर्य ही दिक् और काल का समन्वित पिण्ड है। अब अपने चित्त को प्रशांत हो जाने दें। निवतमान अद्यतन का विस्मरण करें और शाश्वत महाकाल का चिन्तन करें, अद्यतन तो क्षण भंगुर है और लीला हैं अब अपने दाहिने हाथ के अंगूठे को दोनों भौंहो के बीच रखें और तर्जनी को मस्तक पर लगा दें।" स्पष्ट है कि फैंटेसी एक ऐसी कल्पना है जिसके आज या वर्तमान में होने की सम्भावना न हो अर्थात् यह एक अविश्वसनीय वर्णन पर आधृत है।

आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली में 'मैं' ही सब कुछ होता है अर्थात् कहानीकार कहानी में 'मैं' के माध्यम से कथा विस्तार करता है। पीटर पक्कल एक्का ने अपनी कहानी 'राजकुमारों के देश में' में 'मैं' शैली को अपनाया है। यथा– "जाने कैसे मंगलू काका मेरे जीवन में आकर रच बस गया था। औरों के लिए वह मंगल वैद्य था पर मेरे लिए शुरू से ही मंगलू काका।" कैलाश बनवासी ने 'लोहा और आग ... और वे' में भी आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है।

निबन्धात्मक शैली

निबन्धात्मक शैली में रचनाकार अपनी कथा को कई उपशीर्षको में विभक्त कर कथा को आगे बढ़ाता है। प्रत्येक उपशीर्षक अपने अन्तर की कहानी पूर्ण अस्तित्व के साथ रूपायित होती है। अधिकांशत: लम्बी कहानियों में इस शैली का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणस्वरूप उदय प्रकाश की 'मैंगोसिल' कहानी क्रमश: 'जहांगीरपुरी की गली नंबर सात', 'शोभा भागकर लाई गई थी', 'मियानी में शोभा', 'पखेरुओं का घोंसला और अण्डे', 'अभंग', 'खुसरो दरगाह' और 'पहला जीवित बच्चा', 'एक लगातार बड़ा होता सिर' आदि उपशीर्षको में विभाजित करके लिखी गयी है।

चित्रात्मक शैली

इस शैली में कहानीकार एक चित्र की तरह अपनी कहानी को कहता है। इस शैली में कहानी का परिवेश पाठक के मन बड़ी सरलता के साथ उतरता जाता है। प्रकृति का चित्रण करते हुए कोमल अपनी कहानी 'साहूकार की मछली' में मछली पकड़ने गये बुधुआ का चित्रण देखें– "सूरज अब पहाड़ियों से कुछ ही हाथ ऊपर रहा होगा। हवा अब धीमे–धीमे बहने लगी थी। गेहूँ की पीली बालियाँ सूरज की पीली रोशनी में हौले–हौले डोल रही थी, मानो गेहूँ के पौधे अपनी बालियों को हिला– हिलाकर सूरज को विदा कर रहे हों।" चित्रात्मक शैली द्वारा कहानी की सम्प्रेषणीयता बढ़ गयी है।

रिपोर्ताज शैली

इस शैली में कहानी रपट की भाँति लिखी जाती है और यह अधिक प्रभावशाली भी होती है। इस शैली में केवल कहानी ही नहीं बल्कि सब कुछ रहते हैं। संजीव ने अपनी कहानी 'अपराध' में रिपोर्ताज शैली को अपनाया है। इसी कहानी से एक बानगी द्रष्टव्य है– "अपराध और अपराधी की

प्रकृति और प्रकार, व्यक्तिगत और परिवेशगत संस्कार और उद्दीपनाएँ, मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय विवेचन और विश्लेषण करने हेतु मैं एक थाने से दूसरे थाने में फाइलों में बिखरी आँकड़ों की सांख्यिकी में भटक रहा था कि एक दिन थाने के बाहर शचिन के पिता राखल बाबू ने पकड़ लिया। वे काफी बदहवास लग रहे थे। उन्होंने बताया कि... अभी-अभी शचिन को पकड़कर इसी थाने में लाया गया है।" कहानीकार उदय प्रकाश ने भी अपनी कहानी 'तिरिछ' में इस शैली को अपनाया है।

नये दौर की हिन्दी कहानियों की भाषा एवं शिल्पगत अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि आज के कहानीकारों ने नवाचार के लिए शिल्पगत सौन्दर्य अनुभूतियों या अनुभवों के द्वारा प्राप्त किये हैं। उनकी भाषा सीधी-सादी सहज एवं सरल है और लोक जीवन और आधुनिक जीवन से जुड़ी भाषा का प्रयोग वर्णनात्मक, बयान शैली और किस्सागोई जैसी शैलियों में प्रस्तुत करके मानव जीवन को समाज के सामने प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है। इन कहानीकारों की भाषा ओजपूर्ण, अर्थवान एवं संश्लिष्ट है। उनकी युगीन भाषा में सरलता का पुट होने के कारण वह जन साधारण के पढ़ने में सुविधाजनक है। आज के कहानीकारों की भाषा अभिव्यक्ति प्रतीक, बिम्ब, मुहावरों एवं लोकोक्तियों से सम्पृक्त होने की विशेषता रखती है।

(ङ) पाठ

"आज की कहानियाँ एकात्मक स्तर की नहीं होतीं। अर्थ निष्पत्ति की दृष्टि से उनके अनेक स्तर हो सकते हैं। चूँकि पाठ-प्रक्रिया से अर्थ-निष्पत्ति का सीधा सम्बन्ध है, इसलिए कथा के इन भिन्न स्तरों के प्रति भी हमें सचेत होना चाहिए, जहाँ अर्थ निष्पन्न होता है। मनोरंजन के लिए पढ़ना भी निश्चित रूप से एक निरर्थक क्रिया नहीं है। जो लोग सिर्फ मनोरंजन के लिए पढ़ते हैं वे भी इसके अर्थ के प्रति सावधान रहते हैं, ग़लत: जहाँ कहानी उनका मनोरंजन नहीं कर पाती वहाँ वे उसके प्रति आलोचनात्मक रुख अख्तियार कर लेते हैं-चाहे वह आलोचनात्मक रुख एक ही पंक्ति में अभिव्यक्त हो जाये कि कहानी अच्छी नहीं है।" प्रत्येक कहानीकार यह चाहता है कि उसकी कहानी का पाठ किसी भी स्तर पर हो रहा हो, वह अच्छी कही जाये। इसके लिए उसे कठिन परिश्रम करना होता है। एक बार में ही कहानी लिखकर प्रकाशित करा देने वाले कहानीकार कालजयी नहीं होते हैं, बल्कि कालजयी वे कहानीकार होते हैं, जो कहानी लिखते समय अपना सम्पूर्ण कला-कौशल लगा देते हैं। वस्तुत: "कहानी की पाठ-प्रक्रिया में सजगता, आत्मनिर्णय की सक्षमता और कला-संवेदना के प्रति क्रियात्मक तत्परता की आवश्यकता होती है।"

आज के कथाकार समकालीन हिन्दी कथा-परिदृश्य में अपनी कहानियों की अन्तर्पाठीयता के कारण हमेशा चर्चा में रहते हैं। उनकी कहानियों में जो चीज सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, वह है- उसकी

भाषिक विलक्षणता और उसका सघन, सतर्क, सौंदर्य-मूलक विन्यास। आज की लगभग प्रत्येक कहानी अपने आप में नये आख्यान के भाषिक विन्यास का एक नया 'मॉडल' या उदाहरण प्रस्तुत करती है। लेकिन ऐसा करते हुए वह कहानी के अन्य आयामों को खारिज नहीं करती, बल्कि गहरी अन्तर्दृष्टि, सचेत आलोचनात्मक विवेक के साथ गहरी सृजनात्मक संलग्नता और तपश्चर्या के साथ उन्हें अभिव्यक्त करने की चेष्टा करती है। वर्तमान समय की कहानियों में कथाकार का कौशल और उसकी सृजनात्मक सामर्थ्य कहानी के सम्पूर्ण होने के बाद उपलब्ध होने वाले पाठयकीय अनुभव की प्रतीक्षा नहीं करती, बल्कि कहानी के समूचे पाठ के दौरान हर पल, हर पद और हर वाक्य के साथ कथाकार की मेहनत और हिकमत दोनों का अवबोध कराती चलती है। इतनी संलग्नता, श्रम और धैर्य के साथ लिखने वाला तथा पाठ की इतनी सघन बुनावट करने वाले कथाकार समकालीन कथा-परिदृश्य में अनेक हैं।

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी नवलेंखन- डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. कहानी नई कहानी- डॉ० नामवर सिंह
3. साठोंत्तरी हिन्दी कहानी : उपलब्धि एवं सीमाएँ- डॉ० सुरेन्द्र पाण्डेय
4. हिन्दी कहानी का इतिहास- डॉ० गोपाल राय

जीवन मूल्य और कबीर

डॉ. विनय कुमार शुक्ला
सहायक प्राध्यापक
शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव
स्नाकोत्तर महाविद्यालय, बैकुण्ठपुर
कोरिया (छत्तीसगढ़)

सैकड़ों वर्षों से संत कवियों की वाणी आम जन मानस का पथ प्रदर्शन एवं उन्हें सम्बल प्रदान करती रही है। यह अकारण नहीं की समकालीन संदर्भ में संत कवियों के जीवन मूल्य की सार्थकता बदस्तूर कायम है। मध्यकालीन संतो की चिर-परिचित वाणियों में कबीर की वाणी अग्रिम और प्रभावशाली है। प्रश्न उठता है कि वे कौन से कारण और जीवन परिस्थितियां है जो कबीर को हमारे सर्वाधिक निकट और कुछ मायनों में बहुत दूर ला खड़ा करती है। कबीर ने काव्य रचा नहीं बल्कि कहा है, दोस्तो के बीच, सत्संग करने वालों के बीच, साथ ही खिलाफ रहने वालों के समक्ष सीना तानकार भी अपनी बात को पूरी तार्किकता और साहस के साथ बंया किया है। कबीर की वाणी के विविध आयाम है। फिलहाल यही कि संत कबीर का जीवन मानवता का प्रतीक बनकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। जहां-तूं कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखन देखी का मूल भाव विद्यमान है। यह देखना साधारण देखना न होकर पूरे आर-पार और गहराई तक जाकर निरीक्षण-परीक्षण है। मसि कागद छुयों नहीं, कलम कहयो नहीं हाथ का दावा करने वाले कबीर ने जो कुछ भी कहा है, वहीं उनका साहित्य है। उनकी वाणियों का संग्रह बीजक, नाम से प्रसिद्ध है जो साखी, सबद, रमैनी के रूप में विभक्त है कबीर की वाणियों के अनेक संग्रह प्राप्त है, तथा कबीर बीजक, कबीर ग्रंथावली (संपा बाबू श्यामसुंदर दास), कबीर वचनावली (संपा आयोध्या उपाध्याय हरिऔध) कबीर ग्रंथावली (संपा डॉ. पारसनाथ तिवारी), कबीर (डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी), कबीर बीजक (संपा डॉ. शुकदेव सिंह) संत कबीर (डॉ. रामकुमार वर्मा) आदि। उपरोक्त सभी संग्रहो में संकलित कबीर की वाणियों की खास बात यह है कि कहीं भी कबीर की विचारधारा संदेह के घेरे में प्रस्तुत नहीं है। हर जगह कबीर अपनी बात साफ-साफ कहते हैं। और यह बातें समाज से परे नहीं है, वह तत्कालीन सामाजिक हलचलों के मद्देनजर मुखरित हुई है। भारतीय जीवन पद्धति में से कबीर ने भक्ति का चयन किया है। वे कहते हैं कि-भगति नारदी मगन सरीरा, इह विधि भवतिरि कहै कबीरा।[1] नारदीय भक्ति को प्रेमाभक्ति भी कहा गया है, जहां भक्ति प्रेमस्वरूप होती है। नारद के अनुसार भक्ति परमप्रेमरूपा है,

वह अमृतास्वरूपा है, जिसकी प्राप्ति कर मनुष्य सिद्ध और अनाकांक्षी हो जाता है। ईश्वर सर्वव्यापी है और उस ईश्वर से प्रमप्रेम ही भक्ति है। बकौल कबीर भी–पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढ़ाई आखर प्रेम का, का पढ़े सो पंडित होय।[2] कबीर का यह ढ़ाई आखर का प्रेम सहज है फिर भी सबके बूते का नहीं।

क्योंकि– कबीर यह घर, प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारै हाथि करि, सो, पैठे घर माहि।।[3]

इस प्रेम में अंहकार का कोई स्थान नहीं। यहां भक्त ईश्वर के हर रूप से समभाव प्रेम करता है। क्योंकि–सांई के सब जीव है कीरी कुंजर दोय।[4] कबीर का यह अखण्ड विश्वास है कि उनाका सांई सबमें रमता है। जहां जांत–पांत, छोटे–बड़े सजीव–निर्जीव की कोई अहमियत नहीं, इनमें कोई भेद नहीं।

ध्यातव्य है कि कर्मसाधना, ज्ञानसाधना, योग साधना और भक्ति साधना ये चारा भारतीय साधना के भेद हैं जिनमें भक्ति साधना अप्रतिम है। कबीर के यहां भक्ति, के साथ कर्म, योग और ज्ञान का भी विवेचन मिलता है वास्तव में कर्म ज्ञान और योग से भक्ति पुष्ट होती है। कबीर पहले और बाद में भी भक्त ही हैं। वे राम की भक्ति करते हैं पर वे राम दशरथ सुत राम नहीं है। कबीर ने उपास्य के रूप में राम को अपना आराध्य माना है। वे राम और कृष्ण जैसे अवतारी पुरूष न होकर निर्गुण, निराकार, अजन्मा है – ना दसरथ घरि औतरी आवा, ना जसुदा के गोद खेलावा।[5] तादात्म्य के क्रम में कबीर ने अपने राम को केशव, गोविन्द, मालिक, प्रभु, अल्लाह, आत्मा, परमात्मा आदि नामों से पुकारा है। वस्तुतः भक्ति के चार बातें आवश्यक है – भक्ति, भक्त, भगवान और गुरू। बाबू श्यामसुन्दर दास ने संत कबीर को निर्गुण भक्ति प्रवाह का प्रवर्तक माना है यों स्वयं कबीर ने निर्गुण भक्त के रूप में नामदेव का नाम सम्मान पूर्वक लिया है। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार भी कबीर मूलतः भक्त है जिसके साथ अन्य बातें स्वतः प्रकाशित हो उठी है। अपने सांई पर कबीर का अविचल अखण्ड विश्वास था। जिसके मूल में यह धारणा विद्यमान है कि हर धर्म का आदमी भगवान पर इसी तरह विश्वास करता है। इस भगवत विश्वास से आदमी के मन में समता का भाव आएगा। समता के भाव के कारण व्यक्ति ऊँच–नीच, छोटा–बड़ा, अमीर–गरीब, राजा–रंक, सुख–दुख, शीत–ताप के भेद से ऊपर उठकर मानव हित के बारे में ध्यान देगा। कबीर ने धार्मिक उसे माना है जो भगवान मे अखण्ड विश्वास करता है। बाह्य आचार–विचार, व्यर्थ कुलाभिमान, पूजा का बाह्य–विधि–विधान, तीर्थ, व्रत, उपवास, माला–छापा–तिलक आदि मूलतः धर्म नहीं है। धर्म तो हैं ईश्वर में अगाध प्रेम और ईश्वर द्वारा निर्मित हर रूप में उस प्रेम को देखना। यह अहेतुक प्रेम ही कबीर की साधाना का मूलाधार है। इस साधना के विरूद्ध जो कुछ भी समाज में कबीर ने देखा उसका विरोध किया। लोक और शास्त्र के द्वन्द्व को अस्वीकार कर प्रेम की महता को स्वीकार करते हैं। इस संदर्भ में विवेक, ज्ञान के लिए

उन्होंने गुरू की महिमा की स्वीकृति को अनिवार्य माना। गुरू की महता सभी भक्त कवियों के यहां अनिवार्य है। लोक और शास्त्र की उलझने मानव को जड़ बना देती है। किन्तु सच्चे गुरू के ज्ञान रूपी प्रकाश से व्यक्ति संकटमुक्त हो जाता है।

"पीछै लागा जाइ था लोक–वेद के साथि।

आगै थे सतगुरू मिल्या, दीपक दीया हाथि।[6] कबीर के लिए इस अस्त–व्यस्तता से मुक्ति के लिए गुरू ने यह उपाय बताया कि शरीर को चौसर बनाकर उसमें प्रेम का पासा खेलों – पासा पकड़या प्रेम का, सारी किया सरीर। तात्पर्य यह कि लोक और शास्त्र की वह स्थिति जो मनुष्य को जड़ बना देती हो, उसे बोझ प्रतीत होती हो, भगवान से वंचित कर देती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की 'कबीर' नामक पुस्तक का यह कथन ध्यातव्य है – "यह प्रेम ही सब कुछ है वेद नहीं, शास्त्र नहीं, कुरान नहीं, जप नहीं, माला नहीं, मंदिर नहीं, मस्जिद नहीं, अवतार नहीं, नबी नहीं, पीर नहीं, पैंगबर नहीं। यह प्रेम समस्त बाह्याचारों की पहुंच के बहुत ऊपर है। समस्त संस्कारों के प्रतिपाद्य से कहीं श्रेष्ठ है जो कुछ भी इसके रास्ते में खड़ा होता है वह हेय है। उन्होंने समस्त, व्रतो, उपवासों और तीर्थों को एक साथ अस्वीकार कर दिया.....उन्होंने एक अल्लहा निरंजन, निर्लेप के प्रति लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित किया।[7]

एक निरंजन अलह मेरा, हिन्दू तुरूक दुहूँ नहिं मेरा।
राखूँ व्रत न महरम जाना, तिसही सुमिरूं जो रहे निदाना।।[8]

कबीर सब प्रकार के झमेंलों से गुरू अंजन का ज्ञान रूपी लेप लगाकर खुद को बचा ले जाते हैं। उनके सामने लक्ष्य बहुत बड़ा था। वे मनुष्य से मनुष्य के मिलन का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। इसीलिए सभी प्रकार के कर्मकाण्डों को अस्वीकार कर दिया और मनुष्य को मनुष्य के आसन पर बिठाने का महत कार्य सम्पादित किया। उनके भगवान किसी सीमा में बंधे नहीं हैं वह निरपेक्ष होकर जाति, वंश, कुल, पथ सम्प्रदाय, धर्म और मजहब से अलग है। वह असीम और स्वतंत्र होकर भी सर्वत्र है। वह अखण्ड होकर भी घट–घट वासी है। वह परमतत्व प्रेम से प्राप्त होता है। जो कि सर्मपण खोजता है क्योंकि–प्रेम न खैतो नीपजै, प्रेम न हाट बिकाइ। राजा परजा जित रूचै, सिर दे सो ले जाइ।।[9]

कबीर का जीवन प्रेम का जीवन है, और प्रेम सहजता की मांग करता है। जहां अंहकार का नामोनिशान तक न हो यह प्रेम ही है जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है। मानव–मिलन की यह साधना ही कबीर की साधना का मूलाधार है। यही जीवन का सत्य है और यही जीवन मूल्य भी। सिजनहार तो एक ही है, जिसने एक ही मिट्टी से सबको बनाया है एक ही ज्योति सबके अंतरतम में विद्यमान है – "एके पवन एक ही पानी, एक ज्योति संसारा। एक ही खाक धड़े सब भांड़े, एक ही सिरजनहारा।"

सिरजनहार को एक मानकर सम्पूर्ण सृष्टि के साथ उसका तादात्म्य स्थापित कर देना कबीर का मूल लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रेम ही साधन है। कबीर राम मे रमें हुए हैं, तो प्रेम की कसौटी साथ लेकर। राम में रमना प्रेम और समता का जीवन जीना आसान नहीं है। यह वीरोचित कर्म है, कायर ऐसे काम के बारे सोच भी नहीं सकता –

भगति दुहेली राम की, नहीं कायर का काम।
सीस उतारे हाथ धरि, सो लेसि हरि का नाम।।[10]

यह नाम लेना भी बाहरी दिखावा मात्र नहीं, यह तो अंतरतम का वह रूप है जो बाहरी संसार में समता, एकता, बराबरी और प्रेम के रूप में पल्लवित होता है। कबीर के यहां यह सौदा बहुत खरा है, जो सिर देकर ही हो सकता है, मुफ्त में नहीं –

साई सेत न पाइये, बाताँ मिले न कोय।
कबीर सौदा राम सौ, सिर बिन कदै न कोय।।[11]

कबीर सामाजिक विषमता को लेकर व्यथित भी है और विक्षुब्ध भी। इसके पीछे समाज से उनका गहरा जुड़ाव है। बिन समाज से जुड़े ऐसी सार्थक वाणी का आर्विभाव नहीं हो सकता कबीर के लिए सब कुछ उनके सांई का पसारा है। जन-जन का आनन्द राम का आनन्द है जन-जन की पीड़ राम की पीड़ा है ऐसे महाभाव को धारण करने वाले कबीर राम की भक्ति करते हैं जो सर्वव्यापक है। संसार के बाह्यचारों को देख कर वे दुखी होते हैं, उनकी फटकार से मुल्ला और पंडित कोई नहीं बच पाता –

न जाने तेरा साहब कैसा है।
मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहब तेरा बहरा है।
चिउँटी के पग नेवर बाजै, सो भी साहब सुनता है।
पंडित होय के आसन मारै, लम्बी माला जपता है।
अन्तर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।[12]

संत कबीर वास्तव में मानववादी है, वे मनुष्य की एकता में विश्वास करते हैं। उनके प्रेम का आयाम इतना व्यापक है कि समूचा जीव-जगत उनके यहां स्पन्दित होता है। उनका यह मानवतावाद किसी वाद का पोषक नहीं वरन् मनुष्यता के सार्थक रूप में उन्हें काम्य है। कथनी और करनी में एकता कबीर के यहां बद्धमूल है। व्यवसाय और कामकाज, विविध पेशों और धन्धों के कारण भी समाज में छोटे-बड़े की कल्पना थी। कबीर ने इस रूढ़ि को भी अपने कर्म के द्वारा तोड़ा। कपड़ा बुनने का काम, जुलाहा का काम छोटा माना जाता था, इस छोटे काम को भी कबीर ने गर्व के साथ अंगीकार किया।

तू बाभन मैं कासी का जुलाहा
मेरे राम की अभयपद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।
जाति जुलाहा मति को धीर, हरषि हरषि गुण रमैं कबीर।।[13]

कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं होता, मानवता एवं परदुखकातरता ही सच्चे मनुष्य की कसौटी है। जहां धन संचय की भावना त्याज्य है – सांई इतना दीजिए, जा में कुटुम समाय, मैं भी भूखा न रहूँ साधू न भूखा जाय।[14]

कबीर का दु:ख इस बात को लेकर है कि इस पानी के बुदबुदे जैस संसार में मनुष्य अपनी मनुष्यता को त्याग कर बाह्य आंडबरों में उलझा पड़ा है। यह अनायास नहीं कि – सुखिया सब संसार है, खावें अरू सौवे।

दुखिया दास कबीर है, जागै अरू रौवे।।[15]

कबीर हर प्रकार के बाह्य आडम्बरों के खिलाफ है, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न करते हैं। प्रेम के पुजारी होकर भी कबीर पोंगापंथियों पर प्रहार करते हैं। जिसके पीछे एक दर्द का सोता है जो समूची सृष्टि को अपनी बाहो में समेट लेना चाहता है जहां प्रेम की धार अविरल निर्झर रूप से बहती है। इंसानियत कबीर का काम्य है। कबीर की भक्ति इंसानियत की साधक है। इसलिए जो भी कथन, व्यवहार, पूजा–पाठ, व्रत, रोजा, नमाज आदि जो भी भक्ति के विरूद्ध बाह्यचार रूप में विद्यमान है, वे सभी कबीर के निशाने पर है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भर्त्सना अक्सर कबीर के संबंध में की जाती रही है उन्हीं शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्पष्ट रूप से कहा है कि कबीर ने राम रहीम की एकता समझाकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया।[16]

शुक्ल जी भी संत कबीर की मनुष्यता के पोषण के भाव को स्वीकार करते हैं। निष्कर्षत: मनुष्यता का पोषण कबीर के यहां जीवन मूल्य है जहां क्षमा, त्याग, संतोष, प्रेम, सहिष्णुता, परदु:खकातरता, संयम आदि विविध रूपों में विद्यमान है। कबीर के यहां भेदयुक्त कर्म और वाणी का निषेध है। बाह्याडंबर, ढकोसला, तीर्थ–नमाज–रोजा, व्रत और कुर्बानी, मंदिर–मस्जिद आदि भक्ति के लिए आवश्यक नहीं है। वह उस गगन मंडल के स्वतंत्र और सहज गरूड़ है जिसकी कोई सीमा नहीं कोई सरहद नहीं। जहां सब कुछ प्रेममय है। उनके लिए राम के साथ सहज प्रेम ही भक्ति है और वहीं सहज प्रेम सब में होना चाहिए। यही जीवन की सहजता है जो मन, वाणी कर्म की एकता दिखाई देती है। इसलिए –

सहज सहज सब कोई कहै सहज न चीन्हे कोई।
जिन्ह सहजैं हरिजी मिलैं सहज कहीजै सोइ।[17]

जीवन की सहजता ही मूल प्रकृति है जो नाना पंथों, शास्त्रों, विचारों, सम्प्रदायों, मत–मतान्तरों में उलझकर जीवन को त्रिशंकु की हालात में लाकर रख दिये हैं। कबीर सहज सहज के विश्वासी है जो प्रेममय है। जहां मनुष्यता सबसे पहली और अन्तिम कसौटी है। बिना सहज हुए प्रेममय नहीं हुआ जा सकता। कथनी और करनी की एकता सहजता के मूल में विद्यमान है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है, जो जीवन मूल्य की सार्थकता भी है और लक्ष्य भी।

संदर्भ सूची

1. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास पृ.–16
2. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास
3. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास
4. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास पृ.–72
5. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास
6. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास
7. कबीर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ–190
8. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास
9. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास
10. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास
11. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास पृ.–121
12. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास
13. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास
14. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास पृ.–91
15. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास पृ.–92
16. हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य राम चन्द्र शुक्ल
17. कबीर ग्रन्थावली–स. श्यामसुन्दर दास पृ.–57

PART – II

Theme of Alienation in the Modern Literature (A Close Study of T.S. Eliot and Virginia Woolf)

Dr Santosh Bahadur Singh
Assistant Professor, Department of English
Lady Irwin College, University of Delhi
****Dr Satyendra Kumar***
Assistant Professor, Department of English
Kirori Mal College, University of Delhi
*****Dr Varsha Singh***
Associate Professor, Department of English
Deshbandhu College, University of Delhi

Abstract

This study examines the theme of alienation in the works of two influential modernist writers, T.S. Eliot and Virginia Woolf. Focusing on their respective works, such as Eliot's "The Waste Land" and Woolf's "Mrs Dalloway," the analysis explores the portrayal of alienation and its effects on individual identity and the human experience. The study begins by providing an overview of the modernist period and its emphasis on the fragmented nature of modern life. It then delves into the works of Eliot and Woolf, examining how they depict alienation in their narratives. Eliot's "The Waste Land" captures a sense of disillusionment and despair in the aftermath of World War I, highlighting the disconnection and isolation experienced by the characters. Woolf's "Mrs Dalloway" delves into its characters' inner thoughts and perceptions, portraying the alienation and estrangement they feel from others and themselves. The analysis explores the various forms of alienation depicted in the works of Eliot and Woolf. It examines social alienation, where characters are detached from society and struggle to find a sense of belonging. It also explores existential alienation, reflecting the characters' search for meaning and purpose in an apparently meaningless world. Additionally, the study investigates the psychological alienation experienced by characters who feel disconnected from their own identities and emotions.

By closely examining Eliot's and Woolf's works, this study sheds light on the broader theme of alienation in modern literature. It explores how these writers captured the complexities of the modern condition, portraying characters who grapple with the existential crises, fragmentation, and disconnection that mark their era. Ultimately, this analysis deepens our understanding of the portrayal of alienation in modernist literature and its implications for the human experience.

Keywords: Alienation, Spiritual crisis, Age of Anxieties, Stream of Consciousness, Temporal Alienation

Introduction

The early twentieth century may be marked by drastic upheavals in the history of modern literature, culture and nature irrespective of the boundaries between the two countries. During the eighteenth century the logic, reason and science had been the guiding maxims for the writers of the Age of Reason or The Age of Enlightenment. The thinkers were quite assured that progress could be achieved through the exercise of rational and scientific methods. The nineteenth century witnessed the growth of industrialization and scientific growth. The beginning of twentieth century was confronted with the rapid development of technology, the dehumanizing effect of machines, the expansion of the international economy, a great increase in urban population, economic breakdown, mass civilization, isolating and cramping cities, degrading human values, increasing highly materialistic life and mechanization of brean. This type of thought brought a dynamic change in human consciousness. They reshaped the human brain. To quote from *Modernism and After,* "This new age is the scientific urban age, technical age, and cosmopolitan age. Men have learnt to make science so accurate that they sometimes wholly reject the wayward, 'blind' imagination. Under more and more rapid growth of education for many of the century also came to be called 'the age of the man in the street.' As problems have been multiplied, it has been variously labelled as the 'Atomic Age,' 'Electronic Age,' 'Age of Anxieties,' 'Age of Unrest,' 'Age of Self Consciousness, 'Age of Disturbance'." Such rapid changes have surfaced in the culture and literature of the period. T.S Eliot, Virginia Woolf, James Joyce, D. H Lawrence, W.H Auden, and Samuel Becket among others have incorporated in their poetry, plays and novels. "The Waste Land," "The Hollow Man," *Mrs Dalloway, Waiting for Godot* may be taken as the kaleidoscope which reflects the 360 degree reality of the changing world. D.H Lawrence writes:

> It was in 1915 the old world ended. In the winter of 1915-16 the spirit of old London collapsed; the city in the same way, perished from being the heart of the world and became a vortex of broken passions, lust, hopes, fear and horrors. The integrity of

> London collapsed and the genuine debasement began the unspeakable baseness of the press and public voice, the reign of the bloated ignominy, John Bull... The well-bred, really cultured classes were on the whole passive registers. They shirked their duty. (quoted in *Modernism and After by* Munir)

An interrogative attitude to destination and God deteriorated the belief and "radical individualism" became the supreme trend. G. H. Bantock remarks, "In the social sphere increasing knowledge tended only to confirm and strengthen imitations of moral unease and to destroy faith in the essential and unquestioned rightness of the Western way of behavior." The general belief which used to stress the fact that "essence precedes existence" was replaced by the term, "Existence is prior to essence." Existentialism became the dominant flavor of the literature. Under the powerful gust of materialism, capitalism, industrialization and scientific acceleration the face of humanity began to clad in the dust of materialistic illusion. Under the artificial heaven, the loss of communal identity and alienation emerged as new themes. In this connection Virginia Woolf comments:

> On or about 1910 human nature changed... All human nature shifted those between masters and servants, husbands and wives, parents and children. And when human relations change there is at the same time a change in religion, conduct, politics and literature.

Dr Munir remarks that it was the period of cultural bankruptcy; a period of tension between past and present: a period of lost orientations, new manners, self-conscious fashions, the exploration of new tastes, a search for personal identity. The old barriers were collapsing; accepting one's place. Loyalty to authority; unquestioning obedience began to break down; patriotism, doing one's duty, even Christianity seemed questionable ideas. Politically there was an increasing challenge to Capital by Labour.

Further proceedings explore the different types of alienation as proposed in the hypothesis of the paper. As discussed above it is clear that the gap between a human and humanity was increasing and the gap was being filled up by the materialistic appetite. As a result spiritual, cultural, psychological, personal, historical, and existential alienation began to spread their fangs. These types of crises may be noted as a common theme of modern literature but here, in this paper, I have tried to analyze a few selected poems of T. S Eliot and Virginia Woolf's novel *Mrs Dalloway* and *The Light House*.

T.S. Eliot's poetry often captures a sense of alienation and disconnection, reflecting the fragmented nature of modern life and the existential struggles of individuals. He used his pen as a critic of the time. His poems have imbibed spiritual, cultural, personal, and emotional

alienation as the central themes which reflect the mindset of the generation. The further sections delve in his poetic world and try to explore the proposed hypothesis of this research paper.

Spiritual Alienation

T.S. Eliot, one of the most influential poets of the 20th century, often explored themes of spiritual alienation in his poetry. His works reflect the disillusionment and despair that many individuals experienced in the aftermath of World War I and during a time of significant social and cultural changes. Eliot's poems reveal a deep sense of fragmentation, loss of faith, and the search for meaning in a world that seemed detached from traditional spiritual values. One of Eliot's most renowned poems, "The Waste Land," exemplifies this theme of spiritual alienation. The poem portrays a desolate and fragmented world, where individuals are disconnected from one another and from any sense of spiritual purpose. The characters in the poem are depicted as hollow and spiritually empty, reflecting the disillusionment and lack of connection experienced by many in the aftermath of the war. To quote from The Waste Land

> April is the cruelest month, breeding
> Lilacs out of the dead land, mixing
> Memory and desire, stirring
> Dull roots with spring rain.
> Winter kept us warm, covering
> Earth in forgetful snow, feeding
> A little life with dried tubers.
>
> *The Waste Land*

The beginning lines are very suggestive in themselves that the fertility of the land has been degenerating and the gap is increasing between fertility and infertility; life and death and eternal and external wisdom. The earth is going to be the dead land where it is very difficult to survive life. The people are wandering in the dead land in search of moist soil where fertility may be restored. Further, in "The Waste Land," Eliot employs a wide range of literary and cultural references to highlight the spiritual decay and alienation of modern society. The poem draws from mythology, religious texts, and literary works to convey a sense of the fragmented and disordered nature of the world. Through his use of different voices and perspectives, Eliot presents a world in which individuals struggle to find meaning and connection in a spiritually barren landscape. He turns towards the East to recap the spiritual crisis. To quote from the last part of the poem "What the Thunder Said":

DA
Datta: what have we given?
My friend, blood shaking my heart
The awful daring of a moment's surrender
DA
.....
Dayadhvam: I have heard the key
Turn in the door once and turn once only
We think of the key, each in his prison
.....
DA
Damyata: The boat responded
Gaily, to the hand expert with sail and oar
The sea was calm, your heart would have responded
.....

(The Waste Land)

Here, he uses allusion from the *Brihadaranayaka kopanishad, "Damyata, Datta, Dayadhvam,"* the meaning of the syllable "DA" articulated by Prajapati to the three kinds of his children: devas (god), manushyas (men), and asuras (evil spirit). And all of them interpreted its sound in their own way *"Damyata* (control yourself), *Datta* (Give), *Dayadhvam* (Be compassionate)" respectively. The most significant aspect of this Prajapati episode is that the syllable "DA" communicates different meanings to different individuals. It may mean either self-control or charity or compassion may lead to salvation. But Eliot has changed the chronology of the three different terms' articulation of the syllable "DA" *"Data, Damyata, Dayadhvam,".* Here, Eliot seems to give precedence to charity and compassion, which lead to the self-control and from where the journey of eternity begins.

Another poem that explores spiritual alienation is "The Hollow Men." This poem depicts a group of men who are spiritually empty and unable to find redemption or connection with others. Land, in this poem he declares:

This is the dead land
This is cactus land
Here the stone images
Are raised, here they receive
The supplication of dead man's hand
Under the twinkle of a fading star.

"The Hollow Men"

The negative tropes used in this poem declare the chief concern of the poem that compassionate of the heart has been burn in such materialistic emerging culture. There is no space for wisdom and beyond. The repeated refrain, "This is the way the world ends / Not with a bang but a whimper," emphasizes the profound sense of despair and hopelessness experienced by these hollow men.

Like above mentioned two poems, Eliot's exploration of spiritual alienation is also evident in his religious poems, such as "Ash Wednesday" and "Four Quartets." In these works, Eliot reflects on the challenges of faith in a secular and disenchanted world. He grapples with the tension between the demands of modern life and the longing for spiritual transcendence. These poems convey a sense of spiritual yearning and the search for meaning amidst the complexities and uncertainties of existence. Overall, Eliot's poetry captures the spiritual alienation experienced by individuals in the early 20th century. Through his use of vivid imagery, fragmented narratives, and cultural allusions, Eliot portrays a world that is disconnected from traditional spiritual values. His works invite readers to confront the disillusionment and despair of the modern condition and to contemplate the possibility of spiritual renewal in a fragmented world.

Cultural Alienation

Eliot lived during a time of great social and cultural upheaval, and his works reflect the anxieties and uncertainties of the modern age which is changing rapidly. His poetry often reflects disillusionment with contemporary culture and the alienation individuals feel within it. He critiques the shallowness and materialism of modern society, where individuals are isolated and disconnected from authentic human connection and deeper values. This cultural alienation is prominent in poems like "The Love Song of J. Alfred Prufrock" and "Preludes."

In "The Love Song of J. Alfred Prufrock," Eliot presents a protagonist who is socially isolated and estranged from the society around him. Prufrock's thoughts and observations reveal a deep sense of alienation, as he navigates the modern urban landscape and struggles to find a place for himself within it. Here the protagonist of the poem is disillusioned and represented as the icon of degrading cultural value of society. He has death in life. To quote from the poem:

> And indeed there will be time
> To wonder, “Do I dare?” and, “Do I dare?”
> Time to turn back and descend the stair,
> With a bald spot in the middle of my hair —
> (They will say: “How his hair is growing thin!”)

My morning coat, my collar mounting firmly to the chin,
My necktie rich and modest, but asserted by a simple pin —
(They will say: "But how his arms and legs are thin!")
Do I dare?
Disturb the universe?
In a minute there is time
For decisions and revisions which a minute will reverse.

The poem captures the anxieties and insecurities of an individual who feels disconnected from the cultural norms and expectations of his time. The refrain, "Do I dare?" reflects the losing hope and declining confidence due to alienation from the culture.

Further, in his other poetry "The Waste Land," for example, he draws from a wide range of literary, mythological, and historical sources, creating a fragmented and disordered narrative that reflects the fractured nature of modern culture. The poem presents a collage of voices and perspectives, highlighting the disconnection and disintegration of cultural traditions and values. Moreover, Eliot's exploration of cultural alienation is also evident in his treatment of tradition and the past. In his essay "Tradition and the Individual Talent," Eliot argues that the artist's connection to the past is essential for the creation of meaningful art. He emphasizes the importance of drawing upon cultural heritage and tradition while acknowledging the challenges of doing so in a rapidly changing world. This tension between tradition and modernity underscores the cultural alienation experienced by individuals trying to navigate the complexities of the modern age.

In "The Waste Land" and other poems, Eliot presents a world where cultural references are fragmented, and traditional values and beliefs have been eroded. His poetry reflects the cultural dislocation and sense of rootlessness experienced by individuals in the face of industrialization, urbanization, and the breakdown of traditional social structures. Overall, T.S. Eliot's poetry delves into the theme of cultural alienation, exploring the disconnect and dislocation experienced by individuals in a rapidly changing and fragmented society. Through his use of cultural references, fragmented narratives, and exploration of tradition, Eliot highlights the challenges individuals face in finding a sense of belonging and meaning in the modern world

Personal Alienation

Eliot's poems often delve into the personal alienation experienced by individuals in their daily lives. Characters in his poetry frequently feel disconnected from others, trapped in repetitive routines, and unable to form meaningful connections. This personal alienation is

depicted in poems like "The Love Song of J. Alfred Prufrock," where the protagonist is paralyzed by social anxiety and unable to fully engage with others. To quote:

> Let us go then, you and I,
> When the evening is spread out against the sky
> Like a patient etherized upon a table;
> Let us go, through certain half-deserted streets,
> The muttering retreats.....
>
> "The Love Song of J. Alfred Prufrock,"

In this poem "The Love Song of J. Alfred Prufrock," Eliot presents a protagonist who experiences profound personal alienation. Prufrock's stream-of-consciousness narration reveals his inner thoughts and anxieties, highlighting his inability to fully engage with others and establish meaningful connections. The poem captures the internal struggles and insecurities of an individual who feels detached from society and unable to break free from his own self-imposed isolation. Similarly, in "The Hollow Men," Eliot portrays a group of individuals who are spiritually and emotionally empty, devoid of meaningful relationships and personal connections. The poem reflects their inner emptiness and their yearning for redemption and connection. The depiction of the hollow men emphasizes the personal alienation experienced by individuals who are disconnected from their own emotions and from others around them.

Eliot's exploration of personal alienation often intertwines with themes of disillusionment and the breakdown of communication. His characters often struggle to communicate their inner thoughts and desires effectively, leading to a sense of isolation and alienation. This breakdown in communication reflects the difficulty individuals face in understanding and connecting with one another in a complex and fragmented world.

Moreover, Eliot's use of fragmented narratives and multiple voices further emphasizes personal alienation. The disjointed and fragmented nature of his poetry mirrors the fragmented experiences and perspectives of individuals in a modern and disenchanted world. Through these literary techniques, Eliot conveys the personal dislocation and estrangement that many individuals experience in their daily lives. Overall, T.S. Eliot's poetry vividly explores the theme of personal alienation. His works delve into the inner struggles, emotional isolation, and disconnection from others experienced by individuals in a rapidly changing and complex world. Through his profound portrayal of personal alienation, Eliot invites readers to confront their own feelings of estrangement and to reflect on the challenges of forging meaningful connections in a fragmented society.

Historical and Temporal Alienation

Eliot's poetry often portrays a sense of historical and temporal alienation. He highlights the disconnection between the present and the past, emphasizing the fragmentation of time and the loss of a cohesive historical narrative. This type of alienation is particularly evident in "The Waste Land," where different historical and cultural references are juxtaposed to convey a sense of disorientation and alienation from the past. His poetry also delves into the theme of historical and temporal alienation, exploring the individual's disconnection from the past, present, and future. His works often reflect a sense of disillusionment and fragmentation in relation to history, time, and the human experience.

In poems like "The Waste Land," he presents a fragmented and disjointed narrative that incorporates historical, literary, and mythological references. The poem reflects a profound sense of historical alienation, where the past is fragmented and disconnected from the present. The characters in the poem are adrift in a cultural and historical wasteland, struggling to find meaning and continuity in a world that seems detached from its historical roots. In his other poem "The Love Song of J. Alfred Prufrock," for instance, the protagonist Prufrock yearns for a sense of connection and purpose but feels disconnected from the present moment. He is acutely aware of the passage of time and laments his inability to engage fully with life. The poem captures a sense of temporal alienation, where the present is marked by uncertainty and a longing for a more meaningful existence.

Furthermore, Eliot's exploration of temporal alienation is also evident in his use of fragmented and non-linear narratives. His poems often shift between different temporal and historical contexts, emphasizing the disconnection and fragmentation of time. This fragmented approach reflects the challenges of understanding and reconciling the past, present, and future in a rapidly changing world. His treatment of history and time in his poetry suggests a skepticism towards linear notions of progress and a recognition of the cyclical nature of human existence. His works often convey a sense of historical weight and the burden of past events that continue to shape the present. This perspective highlights the historical and temporal alienation experienced by individuals who feel disconnected from the continuity of human history. Overall, his poetry explores the theme of historical and temporal alienation, portraying a fragmented and disconnected relationship between individuals and the past, present, and future. His works convey a sense of disillusionment, fragmentation, and a longing for a deeper connection to history and the human experience. Through his exploration of historical and temporal alienation, Eliot prompts readers to reflect on the complexities of time and the challenges of finding meaning and continuity in a rapidly changing world.

Existential Alienation

Eliot's poetry frequently engages with existential themes and the existential alienation individuals experience in the face of the human condition. The characters in his poems confront the existential dilemmas of mortality, the passage of time, and the search for meaning. This existential alienation is prevalent in poems like "The Waste Land" and "Ash Wednesday." Through these various forms of alienation, Eliot's poetry captures the anxieties and disconnections of modern existence. His exploration of spiritual, cultural, personal, historical, and existential alienation reflects the complexities and struggles of individuals in the modern world, inviting readers to confront the existential questions inherent in the human condition. In poems like "The Love Song of J. Alfred Prufrock," Eliot presents a protagonist who experiences a deep sense of existential alienation. Prufrock's internal monologue reflects his self-doubt, his fear of judgment, and his longing for connection. The poem captures the existential anxiety and the underlying feeling of being out of place in the world. Further, he explores the themes of mortality, the fleeting nature of life, and the struggle to find purpose and significance. In "The Hollow Men," like Samuel Becket's characters of *Waiting for Godot,* the hollow men are symbolic of individuals who are spiritually empty and disconnected from the deeper truths of existence. The poem emphasizes the emptiness and futility of a life devoid of meaning, highlighting the existential alienation experienced by those who grapple with the fragility and transience of human existence.

Furthermore, Eliot's use of fragmented narratives, multiple voices, and allusions to various religious and philosophical traditions contributes to the exploration of existential alienation. His poetry reflects a fragmented and disjointed world, mirroring the existential fragmentation experienced by individuals in their search for identity, meaning, and purpose. Eliot's exploration of existential alienation often intertwines with themes of spiritual crisis and the breakdown of traditional beliefs. His characters often confront the loss of faith, the collapse of moral certainties, and the challenges of finding meaning in a secular and disenchanted world. This spiritual and existential dislocation adds to the sense of alienation experienced by individuals in their search for purpose and connection. Overall, T.S. Eliot's poetry delves into the theme of existential alienation, portraying the individual's profound sense of disconnection, isolation, and existential angst. His works explore the anxieties and uncertainties of the human condition, highlighting the search for meaning, the struggle with mortality, and the challenges of finding purpose in an indifferent universe. Through his profound portrayal of existential alienation, Eliot prompts readers to confront their own existential questions and to reflect on the complexities of the human experience.

Virginia Woolf

Like T.S Eliot, in Virginia Woolf's novels, various forms of alienation are depicted, reflecting the complex nature of human existence and the challenges individuals face in connecting with others and finding their place in the world. Here are different types of alienation, like social, gender, existential, and psychological are observed in Woolf's works. Her literary horizon is full of her own experience of life. The hollowness of life is well depicted in her novels. There is the quest of self in such darkness created by materialism. In the words of Virginia Woolf, "at the present moment we are suffering, not from decay, but from having no code of manners which writers and readers accept as a prelude to the more intercourse of friendship." Here she stresses that even the taste of readers have been changed which has changed the direction pen of the writers. In further discourse, I have shifted my focus on the different types of alienation as emerge in the novels of Virginia Woolfs.

Social Alienation

In Virginia Woolf's novel "Mrs. Dalloway," the theme of social alienation is explored through the experiences of various characters. One notable example of social alienation can be seen in the character of Septimus Warren Smith. Septimus is a World War I veteran who suffers from severe psychological trauma as a result of his experiences in the war. He feels disconnected from society and struggles to find meaning in his life. Septimus's alienation is evident in his inability to connect with other people, including his wife, Rezia, and his doctors. Septimus's war experiences have left him feeling detached and isolated from the world around him. He sees society as superficial and empty, and he struggles to reconcile his traumatic memories with the everyday routines and social expectations of post-war London. He often feels overwhelmed by the city's bustling streets and crowded spaces, which further contribute to his sense of alienation.

Moreover, Septimus's mental health struggles make it difficult for him to communicate his inner turmoil to those around him. He experiences hallucinations and hears voices, which further isolates him from society. When he tries to express his thoughts and emotions, his words are often dismissed or misunderstood by others. This lack of understanding and empathy deepens his sense of alienation. Septimus's social alienation is also highlighted through his interactions with other characters, such as Clarissa Dalloway. While Clarissa seems to have a successful social life, Septimus perceives her as part of the superficial and conformist society that he rejects. He sees her party preparations and social gatherings as empty and meaningless, which further emphasizes his isolation from mainstream society. Overall, Septimus Warren

Smith's character in "Mrs. Dalloway" serves as a powerful example of social alienation. Through his experiences, Virginia Woolf explores the profound impact of war, trauma, and mental health struggles on an individual's ability to connect with others and find a sense of belonging in society.

Gender Alienation

Woolf's exploration of gender roles and societal expectations often reveals a form of alienation specific to women. In "A Room of One's Own," she examines the historical exclusion of women from education and literary pursuits, which results in their intellectual and creative alienation. In novels like "To the Lighthouse," female characters like Lily Briscoe and Mrs Ramsay confront the limitations imposed on them by societal gender norms, leading to a sense of alienation from their own identities and desires.

In Virginia Woolf's essay A Room of One's Own, she discusses the theme of gendered alienation, focusing on the experiences of women in a patriarchal society. Woolf examines how women have been historically marginalized and excluded from the literary and intellectual spheres. Here are some examples of gendered alienation in "A Room of One's Own":

Lack of educational opportunities: Woolf highlights the limited access women had to education throughout history. She describes how women were denied access to universities, libraries, and other spaces of knowledge, which resulted in their exclusion from intellectual discourse. This lack of educational opportunities created a sense of alienation for women, preventing them from fully participating in the intellectual and creative realms.

Exclusion from literary traditions: Woolf discusses how women writers have been marginalized and ignored in literary history. She argues that women's voices and experiences have been undervalued and dismissed as lesser than those of men. By pointing out the absence of women in the literary canon, Woolf highlights the gendered alienation that has prevented women from gaining recognition and influence in the literary world.

Gendered social expectations: Woolf explores how societal expectations and gender roles have limited women's freedom and creative expression. She notes that women were traditionally confined to domestic roles, expected to prioritize their families and households over personal pursuits. These social expectations forced women to suppress their intellectual ambitions and talents, leading to a sense of alienation and frustration.

Lack of economic independence: Woolf argues that economic dependence on men has further perpetuated gendered alienation for women. Without financial autonomy, women were

reliant on male support, which restricted their freedom and agency. The absence of financial resources and stability hindered women's ability to pursue education, writing, and artistic endeavors, exacerbating their alienation from the creative and intellectual spheres.

Male-dominated literary and intellectual spaces: Woolf critiques the male-dominated literary and intellectual circles, where women were often excluded or treated as outsiders. She illustrates how women faced resistance and condescension when attempting to enter these spaces. The lack of representation and inclusivity in these male-dominated spheres reinforced women's alienation and perpetuated the belief that their ideas and contributions were less valuable.

Through these examples, Woolf highlights the gendered alienation experienced by women throughout history. She calls for the recognition and empowerment of women, emphasizing the need for equal opportunities, economic independence, and a supportive environment that allows women to develop their creative and intellectual potential. In this masterpiece novel Woolfs has focused on gender empowerment and equality in society. She urges females to come out from the grip of patriarchal norms and restore their own identity.

Existential Alienation: Woolf's works frequently delve into existential concerns and the search for meaning and purpose. Characters in novels like "To the Lighthouse" and "The Waves" grapple with the existential alienation resulting from the inherent uncertainty and fleeting nature of life. The transitory nature of experiences and the characters' reflection on their mortality contribute to a sense of existential isolation and a yearning for deeper connections and significance. In her novel "To the Lighthouse," existential alienation is a prominent theme that manifests through the experience of her characters' inner thoughts and perceptions f existential alienation in the novel:

Mr. Ramsay's intellectual isolation: Mr. Ramsay, a philosopher and academic, grapples with a deep sense of existential alienation. He is consumed by the pursuit of abstract knowledge and validation from his peers. However, this pursuit distances him from emotional connections with his family, leaving him isolated and detached. He struggles to find meaning and fulfilment in his intellectual pursuits, leading to a profound sense of existential emptiness. Mrs. Ramsay, on the other hand, experiences existential alienation in her own way. She yearns for emotional connection and seeks to create harmony and unity among those around her. However, she is keenly aware of the transience and impermanence of life. Her existential longing for permanence and meaning clashes with the fleeting nature of human existence, creating a sense of alienation and existential unease.

The other character, Lily Briscoe has artistic isolation. Lily Briscoe, a painter, struggles with her artistic endeavors and faces existential alienation as she attempts to capture the essence of life through her art. She grapples with self-doubt and the fear of failure, often feeling isolated in her artistic pursuits. Lily's struggle to find her artistic voice and express her vision of truth reflects her existential quest for meaning and connection in a world that often feels fragmented and elusive. As another example may take Charles Tansley's social estrangement. Charles Tansley, a young scholar and guest at Ramsay's summer house, experiences existential alienation through his social interactions. He is acutely aware of his lower social status and feels inferior in the presence of the Ramsays and their privileged circle. Tansley's self-consciousness and desire for acceptance highlight his sense of social estrangement and existential unease.

The lighthouse as a symbol of existential yearning: The lighthouse itself serves as a symbol of existential longing and alienation throughout the novel. It represents a distant beacon, an unattainable goal that characters yearn to reach but ultimately remains out of reach. The lighthouse symbolizes the existential desire for purpose, understanding, and transcendence in the face of life's uncertainties and limitations. Overall, "To the Lighthouse" portrays existential alienation through various characters and their internal struggles. It delves into the human condition, exploring the longing for meaning, connection, and transcendence in a world that often feels fragmented and transient.

Psychological Alienation: Woolf's innovative narrative techniques, such as stream-of-consciousness, allow her to delve into her characters' inner thoughts and perceptions. This introspective approach often reveals a psychological alienation, where characters feel disconnected from their own emotions, thoughts, and identities. The interior monologues in *Mrs Dalloway* and *To the Lighthouse* illustrate the characters' internal struggles and the challenges of fully understanding and expressing themselves.

By portraying these different types of alienation, Woolf offers a nuanced exploration of the complexities of human existence. Her characters grapple with their isolation, societal limitations, and the existential dilemmas inherent in the human condition. Through her insightful portrayal of alienation, Woolf prompts readers to reflect on the barriers that hinder genuine connections and the universal desire for understanding and belonging. In Virginia Woolf's novel *Mrs Dalloway,* the theme of psychological alienation is a central aspect of the narrative. Woolf's innovative narrative techniques, including her use of stream-of-consciousness and interior monologues, allow readers to delve deep into the inner thoughts and perceptions of her characters. This introspective approach reveals the psychological alienation experienced

by the characters, highlighting their struggles to understand themselves and the world around them. Here is an analysis of psychological alienation in *Mrs Dalloway:*

Woolf's portrayal of multiple characters' stream-of-consciousness narratives reflects their fragmented consciousness and the disjointed nature of their thoughts and experiences. The characters' minds often jump from one thought to another, reflecting the fragmented and disconnected nature of their inner lives. This fragmentation contributes to a sense of psychological alienation, as the characters struggle to form cohesive and stable identities. Further, through the interior monologues of characters like Clarissa Dalloway and Septimus Smith, Woolf reveals their inner turmoil and conflicts. Clarissa, despite her outward appearance of social success, experiences an internal struggle to reconcile her public persona with her true self. Septimus, a war veteran, battles with traumatic memories and a disconnection from reality. Their psychological conflicts highlight their alienation from themselves and their struggle to find inner peace and authenticity.

The characters in *Mrs Dalloway* often feel a profound sense of loneliness and isolation. They struggle to connect with others and find understanding or empathy. This loneliness stems from a lack of true communication and genuine human connection, contributing to their psychological alienation. Clarissa, for instance, experiences a profound sense of isolation despite her bustling social life, feeling detached and disconnected from those around her.

Woolf's characters engage in intense self-reflection, contemplating their own identities and existential dilemmas. They question their place in the world and grapple with the complexities of their own thoughts and emotions. The introspective nature of their reflections highlights their psychological alienation, as they search for a deeper understanding of themselves and their purpose in life. Thus throughout the novel, characters yearn for meaningful connections and understanding. They seek emotional and intellectual connections that could alleviate their psychological alienation. This desire for connection underscores the pervasive sense of isolation experienced by the characters, as they strive to bridge the gap between themselves and others.

In *Mrs Dalloway,* Woolf's exploration of psychological alienation offers a profound examination of the inner lives of her characters. Through their fragmented consciousness, inner conflicts, loneliness, self-reflection, and longing for connection, Woolf portrays the complexities of psychological alienation and its impact on their overall well-being. By delving into the depths of their minds, Woolf invites readers to contemplate the universal human struggle to find understanding, connection, and a sense of self in a world marked by psychological alienation.

Conclusion

To conclude, T.S. Eliot and Virginia Woolf have very nicely encapsulated the mood of the early twentieth-century society. Due to change in consciousness of the time, the materialist upheavels, the degrading human values, the precedence of machine over man, spiritual, social, psychological alienations surface as themes of their work like James Joyce's *Ulysses* and Samuel Becket's *Waiting for Godot.* As a social critic, they have put the mirror up to the reality to the society. Eliot frequently explores the spiritual alienation experienced by individuals in the modern world. In poems like "The Hollow Men" and "The Waste Land," there is a pervasive sense of disillusionment and a loss of religious faith. Characters in his poetry grapple with a spiritual void, feeling disconnected from traditional religious values and struggling to find meaning and transcendence in a secular and fragmented society. Virginia Woolf as a feminist critic attempted to empower the female society as has been well analyzed in her masterpiece novel *A Room of One's Own.* The social alienation has been portrayed through her character Septimus in *Mrs Dalloway.* Over all there a quest to restore the spiritual, cultural, human, and moral values in society.

References

1. Brewster, Dorothy. (1963). *Virginia Woolf.* Allen & Ulwinn, London
2. Drew, Elizabeth. (1926). *The Modern Novel: Some Aspects of Contemporary Fiction.* New York Harcourt.
3. Eliot, T.S. (1963) *Selected Essays.* London: Faber & Faber.
4. Eliot. Valerie. (1971). *The Waste Land: A Facsimile.* New York: Harcourt Brace.
5. Leavis, F.R. (1932) New Bearing in English Poetry. London: Chatto and Windus.
6. Heima, Neil editor. (2005). *Virginia Woolf* Edited and with an introduction by Harold Bloom. , United States of America: Chelsea House.
7. Matthiessen, F.O. (1960). *The Achievement of T.S Eliot.* , New York: Oxford University Press.
8. Munir. (2007). *Modernism and After*. New Delhi: Adhyayan Publishers and Distributors.
9. William, George. (1967). *Reader's Guide to T.S Eliot.* London: Thames and Hudson.
10. https://www.poetryfoundation.org/poems/47311/the-waste-land
11. https://allpoetry.com/the-hollow-men
12. https://www.poetryfoundation.org/poetrymagazine/poems/44212/the-love-song-of-j-alfred-prufrock

Importance of Interplay of Education and Technology in Higher Education in NEP 2020

Dr. Renu Aggarwal
Assitt. Professor,
Deptt of Psychology,
Shri Varshney College, Aligarh

Abstract

The NEP 2020 was introduced on 29th July 2020 when the whole world was facing the most critical phase of pandemic i.e. Covid 19. The pandemic had many negative effects on mental and physical health but one positive aspect of Covid 19 is that it has increased the use of technology in education like online classes, educational webinars etc. The most important part of the NEP 2020 is the interplay of education and technology. In India, requirement of use of technology in sphere of education is increasing day by day. According to NEP 2020 in education system, there will be the extensive use of technology in teaching and learning. The need to embrace technology in professional education (law/medical) as well as the incorporation of technology to expedite the aim of achieving 100 % literacy, has also been put forward. In present scenario virtual learning is replacing in-person learning experiences, therefore, teachers and students are forced to make a change in their teaching and learning techniques to enhance learning, assessment planning and administer for higher education and implementation of NEP is quite significant as it provides a vision of education that will be beneficial for future generation. NEP also emphasises the importance of technology to understand various societal challenges and recommends promoting interdisciplinary research innovation. This paper will focus on the important highlights of NEP especially in higher education, digitalization of education in higher education, certain concerns in Indian context which need to be considered and how the use of technology in education will address the shortcomings affecting the current education system in India.

Keywords: Nep, Interplay, Education, Higher Education, Technology

Introduction

NEP 2020 (National or New Education Policy) is a comprehensive policy document that includes all aspects of education started from early childhood to higher education and also vocational training. This policy seeks transformation of education in India. After extensively consulted with various stakeholders including teachers, students, parents, education experts and civil society organization, this policy was formed by a nine member panel committee appointed by Ministry of HRD and headed by Dr. Krishnaswamy kasturirangam, a former Indian space Research organization chairman and released by the union cabinet of India on 29 July 2020. It replaced the old education policy of India which was made in 1986. In India, the need for a new education policy was felt for a long time. Till now, in India three NEP have been introduced NEP 1968, NEP 1986 and NEP 2020. NEP 2020 has been brought to overcome the shortcomings of the previous education policy and to fulfil the current and future needs which can lead transformative reforms in both the school and higher education sector in India.

The main objective of NEP 2020 is to remodel India's education system and make India a 'Global Knowledge Superpower". To obtain this objective NEP 2020 has been developed with some reforms to make learning stress free, joyful, and holistic. It focuses on 4 pillars access, equality, quality and accountability. It emphasizes on affordable and quality education with the adoption modern technology to all children regardless of their socio-economic status. It focuses on student's individual needs as its aim is to be student-centric. Keeping this in mind, this policy.This policy has changed the current 10+2 system to a new 5+3+3+4 education structure. Regional language or mother tongue will be used as a medium of instructions in the first five grades and all subjects' education is reduced to its core essentials. As this policy focuses on multidisciplinary and holistic education, students will be tested on their abilities to apply concepts in solving real problems instead of rots learning. This policy also emphasizes on quality of teaching. To improve the quality of teaching a lot of measures like teacher eligibility test, teacher professional development programme, teacher education programmes at all levels are also proposed.

Vocational and technical education will also be provided to students which will boost employment in the country. In addition internship will be a part of vocation education. (PARAKH) is a new national assessment platform. It will assess student's learning and help them to analyse their strength, weakness, gaps and potentials.

Higher Education in NEP 202B

Below are some highlights and interplay of education and technology in higher education in NEP 2020

50% increase in GER (Gross Enrolment Ratio)

The aim of NEP 2020 is to increase the GER in Higher Education with vocational education from 26.3% (2018) to 50% by 2035. Almost, 3.5crore new seats will be added to higher education institutions.

Holistic Multidisciplinary Education

The NEP 2020 envisages UG education to be multidisciplinary, holistic with curriculum that will be flexible as well as creative combination of subjects with integration of vocational education. Students can leave the course with an accredited degree. There will be multiple entry points and exist points with appropriate certification for all students. UG courses will range induration of 3 to 4 years with multiple exist options and appropriate certificate within this period. Minimum duration will be of one year to get a certificate. Advanced Diploma will be after 2 years. Bachelor's degree will be after 3 years and Bachelor's with research will be after 4 years.

ABC (Academic Bank of Credit) will be created as a digital recognition awarded for a student's academic performance from different higher education institutions so that these can be transferred and counted towards final degree earned. Universities can verify institutions credits by ABC.

Multidisciplinary Education and Research Universities, at par with IITs and IIMs, are to be set up as models of best multidisciplinary. For fostering a research culture and building research capacity across higher education, 'The National Research Foundation' will be created as an apex.

There will be no requirement of master's degree (M.Phil.). Plans are proposed for literature in India and other classical languages as an option. Students, who opt those, will be free to select the language in which they want to study as well as what they want to study in that language. The same pattern will be followed for those students who pursue degrees in other disciplines like science, technology, engineering and mathematics.

Regulations or Systems

NEP 2020 proposes to set up a National Higher Education Regulatory Council to oversee the regulations of HEIs. Regulation will be light but tight. Higher Education Commission of India will be set up as a single regulatory body for the entire higher education. HECI will have 4 independent council are (i) National Higher Education Regulatory Council (NHERC) for regulations, (ii) General Education Council (GEC) for standard setting, (iii) Higher Education Grant Council (HEGC) for funding and National Accreditation Council for accreditation. HEGC will function through faceless invention through technology & and will also have rights to penalise those HEIs. Who not conforming the norms and standards. Same set of norms for regulations, accreditations and academic standards will be applied for all public and private institutions.

Rationalized Institutional Architecture

NEP 2020 plans HEIs to be transformed into large, full of resources, vibrant () multidisciplinary institutions, that will provide high quality research. The definition of university will allow a spectrum of institutions that range from Research-intensive universities to teaching-intensive universities and Autonomous degree-granting colleges. The policy envisaged that every college will be developed into either an autonomous degree-granted college or a constituent college of a university.

Energized, competent and motivated faculty

NEP 2020 recommends for competent energized and motivated faculty & their recruitment will be clearly defined and transparent. They will have freedom to design curriculum/pedagogy faculty will be accountable for not fulfilling basic norms.

Digitalization of Education in NEP 2020The most important part of the NEP 2020 is the interplay of education and technology. In the last 12-15 years. India has become an information intensive society and there is an increasing requirement of use of technology in the domain of education. In this concern, the NEP 2020 notes that one of the central principles steering the education system will be the 'extensive use of technology in teaching and learning and removing language barriers, increasing access as well as education planning and management."

In the present scenario, due to pandemic virtual learning is replacing classroom learning experiences or in-person learning experiences. Teachers and students are forced to re-think

teaching and learning techniques. At this critical juncture, introduction of NEP 2020 is very significant, because it gives the vision of education for future generation and will be a perfect tool towards building a 'self-reliant' India.

Use of technology in professional and higher education

The NEP calls for in investment in digitalization in professional as well as higher education. Such as digital infrastructure, development of online teaching platforms and tools, creation of virtual labs and digital repositories, teacher's training for becoming higher quality online content creators, establishing standards for contents.

The policy proposes for creating a dedicated unit for the above purposes and that will supervise the e-education needs in higher education.

Some issues related Nep 2020

Although the policy has played an important role in 'absorbing technology in education' in the Indian context, it also has certain issues which need to be considered.

For digitalization in higher education, it is very important that each and every student whether from rural or urban areas should has access to digital hardware like smartphone or computer or tablet exclusively for their use. Today, many students come from under privileged economic background and they have some limitation. They have no access to any digital device or internet or even electricity.

These limitations should be eliminated through digital India campaign and availability of affordable computing devices power supply, basic infrastructure in higher education institutes as well as general awareness on the importance and use of technology.

Conclusion

The internet and Mobile Association of India (IAMAI) has welcomed the NEP 2020 and said. It paves the way for a comprehensive vision on education that will empower the children and youth into the 21st century.

The industry body said that the new policy will help in bridging the digital divide. It stated that the proposal to set up a dedicated unit to coordinate digital infrastructure, content

and capacity building within the education ministry to look after the online learning needs of higher education, will pave the way for digital transformation in of education.

The focus on education with technology will be beneficial in addressing the shortcomings due to which current education system is suffering in India. There should be tie-up in National Education Technology Forum (NETE) under the ministry of education and ED Tech industry as well as educational institutions to establish centres of excellence. This will increase and streamline research and enable the NETE to adopt industry-led best practices. These centres must also encourage Ed-tech start-ups that will help increase access and provide harmonized quality of education. IAMAI noted that NEP has supported the initiative to develop e-courses in regional languages. Following these initiative India will now have the unique opportunity to establish itself as a global destination of digital-ready workforce of the future.

Refrences

1. Jha, A. (2022) National Education Policy – Higher Education Reforms. Accessed from https//www.budy4study.com.
2. Singh, D. (2020) NEP 2020: An interplay of education and technology. Corporate.cyrilamarcandblogs.com.
3. Verma, H.; Kumar, A. (2021) New education policy 2020 of India : A theoretical analysis. International journal of Business and Management Research (IJBMR). Review article, volume 9, Issue 3 page 302-306/ e. ISSN 2347-4696 Accessed from http://www.researchgate.net
4. National Education Policy 2020 – Reforms in higher education (2021)27, Accessed from http://digitallearning.eletsonline.com
5. https://vikaspedia.in>education

Quest of National Identity in 'The Silver Box' Through Readers' Point of View

Sanjeev Kumar Bansal
(NET in Education and English),
Assistant Professor,
Department of English, Shri Varshney College,
Aligarh, UP- 202001
**Pramod Kumar Singh,*
Research Scholar (English), Lecturer (English) at DIET,
Faridpur, Bareilly, Uttar Pradesh

Abstract

Various individual and comparative researches have been conducted at pre-doctoral, doctoral and post-doctoral levels on the plays and novels of Munshi Premchand and John Galsworthy but from the translational comparative point of view and through the review of the related literature, it seems that no comparative research had been conducted so far on the three plays of John Galsworthy i.e. The Silver Box, Strife, and Justice which had been translated by Munshi Premchand in Hindi as 'Chandi Ki Dibiya', 'Hadtaal', and 'Nyay'. So, we have selected one of the three plays i.e. The Silver Box (Chandi Ki Dibiya) for our translational thematic-comparative study.

The objective of our study is to take up the theme in Indian context where casteism, feudalism, untouchability, religious, fanaticism and other discriminations are found prevalent. As the Reader-Response Theory propagates that readers have their own meaning of a work of art. So, what the readers of Hindi language think of The Silver Box translated by Munshi Premchand is our primary objective.

Keywords: Comparative Research, Culture, Re-Creation, Discrimination, The Silver Box, Reader - Response Theory, Mythology

Introduction

Reader-Response theory is also known as Reception theory or Hermeneutics and came into existence in or around 1970s. Readers affects the texts on the basis of their understandings.

Hans Robert Juss (A German Critic), Wolfgang Iser, Umberto Eco, Stanley Fish, Michael Riffaterre etc are some big names related with this theory. Reader is a person who completes the text after reading it. Without readers, the text remains quite incomplete.

This paper makes an attempt to figure out the feelings and experiences of a reader as was aimed by John Galsworthy himself. This paper adopts comparative method of study to compare the plays of Hindi writers with similar themes as social, legal, political, and economic injustice. As language shows the culture and identity of a nation in its' full diversity and complexity, it surely shows the national identity of the nation. Our present study tries to show the Hindi translation of 'The Silver Box' by Munshi Premchand and also tries to deduce the meanings and effects of the original text to the area where Hindi is spoken.

In the words of John Galsworthy, his aim was 'to create such an illusion of actual life passing on the stage as to compel the spectator to pass through an experience of his own to think and talk and move with the people he sees thinking and talking and moving in front of him." Quest of national identity in 'The Silver Box' authored by John Galsworthy and translated in Hindi by Munshi Premchand through readers' point of view is the full title of our research paper. The play 'The Silver Box' was published in 1906 in the Edwardian Era of England. This was the era when social reforms were voiced and a gradual shift in political system was in the process. The labourers, domestic servants, the industrial working-class people and women were demanding equality and better life- style. It was the early phase of the liberals who despite many contradictions championed the voice of the working class. On the other hand, the labour party was also coming to its own.

The Silver Box (1906)- this book presents a criticism of the law prevailing in England during his times. It deals with the old criticism of British Law so pointedly referred to by Goldsmith in his popular poem 'Traveller that there is one law for the rich and another for the poor. Galsworthy tries to show in 'The Silver Box' that law can be purchased by the power of wealth. (Patil, 11)

The Silver Box presents before us a balanced view of the affluent and the poor through Barthwick and Jones family. It shows the hypocrisy of Mr Barthwick, an MP and a liberal leader who proclaims himself to be the supporter of the poor and underprivileged but behaves very differently with Jones and his wife. He suspects Mrs Jones of stealing the silver box and cunningly asks many questions about the box. He saves his son John from all difficulties while he wants strict punishment to Jones for the same crime. He suspects the poor people to be burglars and wants them away from the house. Mrs Barthwick over protects her son and overlooks his faults and misdoings. She closes her windows to avoid listening, weeping of Jones' daughter

who came to her house to search for her mother after she and her husband were arrested. Mrs Jones is the only character who arouses sympathy in the readers. She is honest, responsible, sensitive and sensible. Though she is ill- treated by her husband, she loves him. She does not make any complain against her husband. Mr Jones is the voice of the working -class people who has become bitter after he was expelled from the job. He was not given any chance to live his life respectfully and honestly by the society. He shows no civility to the affluent while talking to them. The anger in him killed all the good demeanour required of a sensible person. He is the symbol of what unemployment can do to a young man. But John Galsworthy presented his character with all his qualities and vices. He is also responsible for his present condition because of his misdoings. He pregnants Mrs Jones before their marriage and is expelled from the job. He doubts his wife of immoral relationship while he himself was loitering after women. He badly ill-treated his wife. He stole the silver box and crimson purse and did not feel himself guilty. But it is beyond doubt that he loved his wife and children. He attacked Snow, the detective when he was arresting his wife. He felt very sad to see his children hungry and repented for their birth. Galsworthy has succeeded in presenting the role of the society and the individual (as in the case of Mr John) for his doom.

The main theme of the play is legal injustice. On paper, the law is same to all the rich and the poor, the powerful and the weak, and the privileged and the under privileged but in reality, it is just the opposite. The rich who are powerful and the privileged unite and distort it, favour them and crush the already crushed poor, weak and underprivileged. In The Silver Box, Mr Barthwick, Mrs Barthwick, Snow (the detective), Roper (the lawyer) and even the magistrate become united and Jones, who was already in pitiable condition is punished severely and Mr Barthwick's son John is saved with all cunning efforts. All the more, Barthwick withdraws his petition to punish Jones for stealing the silver box to show his magnanimity and large-heartedness, though it is clear that he did not want the crimson purse to be discussed, which was stolen by his son. The same law was not the same for the rich and the poor. Even, the magistrate, who should be the, protector of the law, did not want to punish Barthwick's son.

The case goes on trial, and in a London police court it is soon demonstrated who truly took The Silver Box. Jones goes to jail, while youthful Barthwick, with the guide of costly lawyers gets off scot free. The senior Barthwick's radicalism is demonstrated shallow when his self-interests are undermined. At the point when toward the finish of the play, having lost her occupation, the charwoman swings to her previous manager in supplication, he can just sneak away, his false reverence unmasked. (Daves, 102)

'Chandi Ki Dibiya'

Munshi Premchand, the novel-king of India, and arguably the most loved writer, chose The Silver Box for translation. He got it published in 1930. He is the ultimate champion of the weak, the marginalised, the underdogs and took social, economic and political themes to raise the voice against injustice of all sorts. Realism is beautifully portrayed in his novels which describe the problems of the poor and the middle-class people dwelling in towns and cities. The main themes of his works are corruption, feudal system, poverty, child- widowhood, prostitution, and India's freedom movement. The theme of The Silver Box must have impressed Munshi Premchand that was why he chose it to translate in Hindi. As these were the themes that kept on featuring in all his works. He was against all sorts of injustice! Be it social, economic, political, educational or cultural backwardness.

The Silver Box was translated and given the name in Hindi 'Chandi Ki Dibiya'. It was published in 1930. It was the time when the Britishers were ruling India. Indian people were far away from democratic way of life and were being heavily exploited by the Britishers. Moreover, the structure of Indian society is a very complex one. In the times of 1930, though the same problems are still present, feudalism, casteism, religious differences, provincialism, linguistic differences, child marriage, sati-pratha, untouchability and utter backwardness of certain castes were the major traits of the Indian society. The plight of the labour workers, tenets, women and certain backward castes was way worse than the working-class people in the England of that time. In England, those people had started to raise their voices and were heard by the political system but here in India, people had almost no political freedom. Those deprived classes of people were exploited by the English, the feudalist, the powerful upper-castes on the basis of religion etc. So, the theme of The Silver Box was more than suitable for Premchand to translate it in Hindi. It can certainly be said that 'Chandi Ki Dibiya' has become a recreation.

The Indian reader easily associates the Barthwick family to the family of Indian Zamindars who used to usurp the lands of the poor people on the name of failing to pay debt on high interest or by force. There was no law for the poor people to defend themselves. If it has so, they were not aware and educated to use that law for justice. The renaissance happened in India in 19th century and unlike England where it was in 16th century. So, we can say that India was much more afflicted with many social, economic and political problems.

The theme of The Silver Box is universal in nature and it fits in the Indian society still now. Still we see rich businessman and political leaders do corruption and running away to abroad and an average Indian gets punishment by the law. So, the legal justice is still not here in India in true sense. The crimes committed by the powerful are not met with punishment and the case

lingers on for decades. Judicial courts are not as per the huge population of India and crafty lawyers like Roper, in unison with the powerful, twist laws to their favour. The poor and the victim do not get justice easily while if they do anything wrong, they are met speedy trial in the court by the wealthy and the powerful and punished sternly. So, the readers easily find the glimpse of Indian society and Indian judicial system and co- relate them. The play 'The Silver Box' or 'Chandi Ki Dibiya' seems to be their own.

As the play 'Chandi Ki Dibiya', was published before Independence Day. The standard Khari Boli Hindi is not used in translation. Munshi Premchand had a good mastery over Urdu language and so the Urdu words are used in plenty especially because of the lack of development and circulation of Khari Boli Hindi in that time and the use of Urdu language in courts and administration. The words like Shauhar, Khidmatgaar, Raushni, Bardasht, Narm, Muskurata, Saiesi, Niyat, Tabdili, etc and many more words of Urdu language are used extensively. Some English words are written in Devnagiri Lipi like Member of Parliament, Election, Clerk etc. many words of pure literary Khadi Boli Hindi have also been used like Dhanyavaad, Sahanubhuti, Siddhant, Paschataap, And Saubhagya etc. Munshi Premchand neither consciously tried to use a single language like Hindi or Urdu nor it was possible because Hindi and Urdu languages are so intermingled in the idioms of conversation and in the script of written works that they are called real sisters.

Munshi Premchand did a remarkable job of translating The Silver Box for the current readers of Hindi and the play is a joy to read still today, though humour part is one that felt difficult to maintain because of different cultures. The theme of the play still impresses the readers and so he wishes that many works in foreign languages are translated so that he has the reach to them in his/her own native language.

Suggestions for Further Researches and Conclusion

The researchers can translate Hindi plays or novels into English language to break the language boundaries and to facilitate the researches. The three plays (Karbala, Prem Ki Bedi, & Sangram) written by Munshi Premchand need to be translated into English language. As we all know, translation is a double-edged sword too. If not done sensibly, it can mar the beauty of the work of art as well distort the meaning to the extent of being unpleasant. Researchers may take the idioms and other words into account used by Hindi writers and explain them in relation with the words and idioms in the original text in English.

Language in both written and oral form is the expression of culture and each word has its roots deeply extended to the remote past. So, the words in one culture may have a very

specific meaning because of the common mythologies and traditions, whereas attempting to translate the text and retain its' true colour and meaning becomes challenging because of cultural differences. Translation is not merely trying to say what was said in the original text. It may consciously or unconsciously present the identity of the nation of which language is sought to translate the text. In this way, translation can befittingly be called a Re-Creation.

Works Consulted

- Ahlgren, Ivan Edward. Study of John Galsworthy's Social Criticism. U of Montana. 1947.
- Bansal, Sanjeev Kumar and Prof. Sharmila Saxena. 'Correlation between Idealism and Tragedy: A Study of Tragic Patterns in the Select Novels of John Galsworthy." International Literary Quest, vol. 12, issue- 01, July- December: 2020, pp. 148–156.
- Barker, Dudley. The Man of Principle: A View of John Galsworthy. London: Heinemann, London Melbourne Toronto, 1963.
- Bingham, Fern Catherine. Galsworthy and the Theme of the Unhappy Marriage. U of Arizona, M A Thesis. 1937. hdl.handle.net/10150/553312
- Biswas, Anima. The Art of Galsworthy: A Study of His Plays. Burdhwan, West Bengal. 1975
- Cambridge International Dictionary of English. Cambridge University Press.
- Catalogue of Research Work Awardees of Ph. D., D. Sc. & D. Litt. Degrees from January 1973 to February 2005, Kumaun U., Nainital, Uttarakhand.
- Choudhuri, Ashoka Dev. Galsworthy as a Modern Dramatist. U. of Calcutta. 2016.
- Cuddon, J. A. Dictionary of Literary Terms & Literary Theory. UK: Penguin, 2000.
- Das, Bijay Kumar. A Handbook of Translation Studies. New Delhi: Atlantic Publishers. 2005.
- Daves, Arun and Dr. A. Selvaraj. 'Galsworthy's Dramatic Craftsmanship as Seen in The Silver Box, Strife and Justice — A Basic Study" International Journal of English Language, Literature and Translation Studies (IJELR), Vol. 4. Issue.1., 2017 (Jan-Mar.), pp. 101-104
- Dikshit, A. K. John Galsworthy as a Dramatist of the Change in Social Values from the Year 1910 To 1930. Agra.1958.
- Dr Raghukul Tilak and Dr Anupama Gupta. Social History of England. Bareilly: Prakash Book Depot. 1996.
- Garg, Madan Lal. Human Relationships in the Plays of John Galsworthy. Meerut. 1989.

- Kalele, Vasant A. A Study of Problems and Techniques of Galsworthy's Plays in the Perspective of the Problem Plays Between 1890–1939. Devi Ahilya.1972.
- Kumar, Ravi. Role of Translation in Nation Building. Modilingua Indian Translation Association.
- Kumar, Sanjeev. The Theme of Love and Marriage in the Selected Problem Plays of John Galsworthy & Munshi Premchand– A Comparative Study. Pre-Ph.D. Course Work Dissertation. Kumaun U. Nainital. 2014.
- Kushwaha, M. S. Indian Doctoral Dissertations in English Studies. Delhi: Atlantic Publishers & Distributors, 2000.
- Kushwaha, MS. English Research in India. Swastika Publications, Lucknow. Volume one. 1972.
- Mishtri, R. A. The Concept of Social Justice in Galsworthy's Plays. Bhagalpur.1980.
- Motiram, R. H. For Some We Loved: An Intimate Portrait of Ada and John Galsworthy. London: Hutchinson. 1956.
- Nair, M. Gopinathan. The Mind and Art of John Galsworthy. Kerala.1971.
- Pandey, Ajay Kumar. Social Criticism in the Plays of John Galsworthy. Gorakhpur. 1999.
- Pangu, D. N. John Galsworthy's Shorter Plays. M. Phil Thesis. 1986.
- Patil, Hemlata V. John Galsworthy the Playwright: A Study in Humanism. Karnataka. 1985.
- Patil, Namdev D. Social Realism in the Selected Plays of John Galsworthy & P. K. Atre: A Comparative Study. Rajasthan. 2012.
- Premchand (Translator). Chaandi Ki Dibiya. Delhi: Gitanjali Prakashan. 2008.
- Prof. A.N. Gupta & Prof. Satish Gupta. The Silver Box. Bareilly: Student Store. 2008-09.
- Subha Rao, V. Social Relevance of the Plays of John Galsworthy: A Selective Study. Andhra.1988.
- Takahashi, Genji. Studies in the Works of John Galsworthy with Special Reference to His Visions of Love and Beauty. Tokyo: Shinozaki Shorin, n.d.
- The Modern Language Association of America. The MLA Handbook. Version 8.
- Tiwari, Sushil. The Emancipation of Women in Galsworthy's Plays. Agra, n.d.

Web-Sources:

- http://ebooks.adelaide.edu.au/g/galsworthy/john/

- http://en.wikipedia.org/wiki/Thematic_analysis
- http://en.wikipedia.org/wiki/Theme (narrative)
- http://www.online-literature.com/john-galsworthy/

  https://en.wikipedia.org/wiki/Thematic_analysis
- https://www.gutenberg.org/files/2906/2906-h/2906-h.htm
- https://www.litgalaxy2019.com/2022/08/the-silver-box-john-galsworthy-critical-analysis.html
- http://www.ijelr.in/4.1.17/101-104%20ARUN%20DAVES.%20A.pdf

Steps Towards Some Administrative Reforms

B.N. Mishra

There is no need for any introduction as the issues are well known. Two issues would be considered here viz (i) Appointments to top Judiciary and some other top organizations of administration like Election Commission and others and (ii) Institution of the Lokpal Commission.

These issues stir the national concern and sentiment, very vigorously.

(i) Appointments to top Judiciary and some top Organizations of the administration.

The proposed scheme is shown in Appendix 1, which is selfexplanatory. It needs urgent attention as the country is stuck in the logjam between the Govt. and Judiciary. If the solutions as proposed are accepted in principle, details of various clauses could be finalized after an enlightened discussion.

The issue of Appointments to SC and EC is becoming very hot. The Govt. is taking one position and the SC the another. The crux of the issue is that neutrality has to be assured and 'justice not only must be done but it must look like that justice has been done". Though these issues have not been discussed in the Constitution but a living Constitution for a living nation must evolve over a period of time taking lessons from the experience gained. Hence, the proposal. It has been given in Appendix-1 which is self-explanatory.

(ii) Lokpal Commission.

Everybody wants corruptions to end. But beyond this sentiment when it comes to the question how to resolve this issue, differences arise. The whole nation, the Govt. and the so called crusaders seem to have missed one point. It is as follows.

Plato had said 'Power corrupts. Absolute power corrupts absolutely".

This line of wisdom has been lost in the sentimental hue and cry. A Govt. is called corrupt

because some of the so called functionaries of the Govt. are corrupt. Govt. cannot run without its functionaries nor can the functionaries function without power. So it is the power that is at the root of corruption. Now the question is if one set of functionaries can become corrupt because of powers vested in it where is the guarantee that another set of functionaries created in the garb such as Lokpal/Jan Lokpal (or whatever) will not follow the same path over a period of time. The whole concentration is about more power to Lokpal/Jan Lokpal. It is well known that 'more power corrupts more." Therefore, the real issue is how to go about creating a structure that would prevent corruption from taking place. When we think about this structure the following points need to be kept in the centre.

(i) This structure should not have power in the sense power is normally understood. The power should be more in terms of conscience keeper, when we talk of Lokpal/Jan Lokpal.

(ii) The structure should not create a huge number of functionaries requiring a huge expenditure on their salaries etc.

(iii) The structure should not require a large number of new Rules. Even Advani ji agrees that there are sufficient Rules to tackle corruptions.

(iv) The structure should not function as an Audit agency like CAG whose function is to find out irregularities and/or corruptions after they have been committed. Their job is akin to post-mortem. The proposed structure should function to prevent corruption from taking place because prevention is better than cure.

Now having set out the above parameters a structure could be designed. There could be more than one design.

If this logic is acceptable it is not difficult to find a solution for the structure that shall be free from corruption by its very design.

Design of the structure

There could be more than one design to meet the criteria listed from (I) to IV. However, one sample design is being suggested in the following paragraphs. Modifications and improvements are possible.

From (i) it follows that the power distribution as existing today should be retained with the Executives viz the Ministries, Departments etc. Normally corruption arises in procurements, award of contracts for some works or services etc.

Before going further let us have a look at Appendix-2 for clarity The Executives are certainly empowered to persue a proposal as per the relevant Rules. After taking decision the File should be sent to the

Lokpal Commission (LC) or Lokpal Board (LB) as the case may be (we will explain what is LC/LB subsequently) for concurrence. The LC/LB may either concur or send back the File with opinions/observations within a time bound frame. Now the Executives have to take further actions. If the LB have given concurrence, further executive actions should be taken. If opinions/observations have been communicated by the LB, the executives must take note for further actions or approach them again with full justifications to resolve all contradictions. The opinion of the LC/LB shall ultimately prevail. In such a system the Executives are being watched for their actions and the final decision shall be a filtered one through the filtering action of the LC/LB. Here it is obvious that preemptive action has been taken to prevent the corruption from taking place. It is just opposite to the function of the Audit/CAG whose job is akin to post-mortem and not the duties of the Doctor to cure the disease.

The concept outlined above can go a long way in checking corruption. LC/LB shall be functioning as conscience keeper.

One must remember, the wife of Caesar must behave like the wife of Caesar. Now we come to the structure of LC/LB. From (ii) it follows that there should not be many full time employees. We will keep this in mind while suggesting the composition of LC/LB. Therefore, all retired persons who will constitute LC/LB should be paid only certain honoraria and travel expenses etc.

Composition of LC: (Election to be conducted by Election Commission) to mitigate the controversies as to who would appoint/constitute LC/LB.

Chairman: Retired CJI. To be elected by the Constituency of SC and High Court Judges serving and retired.

Member: Retired Cabinet Sec. To be elected by all IAS serving and retired.

Member: Retired IPS at the level of Director General. To be elected by all IPS serving and retired.

Member: Retired CAG of India. To be elected by all Audit and Accounts Service officers serving and retired.

Member: Retired Vice Chancellor or academician from the constituency of academia.

Member: Eminent Industrialist. To be elected by Industrialists/Businessmen.

Member: Publicman. To be elected by members of Lok sabha and Raj sabha.

Member Secretary: Secretary Home ex officio, or an officer of similar status.

Such a body we may call National Lokpal Commission NLC that will be truly independent and free from any undue influence from any quarter. NLC may constitute a number of National Lokpal Boards

(NLB) which will have jurisdiction over specified

Ministries/Departments. In case of divergence of opinion between Ministries/ Departments and NLB the issue should be referred to the NLC whose opinion shall be binding.

Similar modular structure for States should be also in place which we may call State Lokpal Commission (SLC) and State Lokpal Boards (SLB).

Constitution of SLC: (Election to be conducted by Election Commission) or Chief State Election Commissioner.

Chairman; Retired SC Judge/Chief Justice of HC. To be elected by all SC and HC judges serving and retired.

Member: Retired Sec to the GOI or Chief See of States. To be elected by all IAS serving and retired.

Similarly other 5 members to be elected as proposed for NLC.

Member Sec: Home Sec of the State concerned Ex officio or an officer of similar status.

This body called SLC may constitute a number of SLBs which will have jurisdiction over specified Ministries/Departments. SLC and SLB shall function on the same lines as NLC and NLB.

Similarly at the Divisional and District levels Divisional Lokpal Boards (DLB) and District Lokpal Boards (Dist LB) may be constituted with Rertired HC judge as Chairman and Div Commissioner and District Magistrate respectively serving as Ex officio member Sec. Other 5 members should be on the similar lines as for NLC/NLB or SLC/SLB. At the Sub Divisional and Block levels SDLB and BLB should be constituted with Retired Dist and Session Judge/ Addl DSJ as Chairman and SDO/BDO serving as Ex officio Member Sec. Other members could be on the lines analogous to the NLB/SLB or DLB.

Such a structure will cover the whole country for checking corruptions.

The structure as suggested above will not need a large number of new Rules.

This structure will be able to prevent corruption by taking preemptive action. This is important. Audit and preemptive action should be complementary and symbiotic. The objective of both is the same. But the solutions to a vexed question can come only upon pondering the issue coolly and scientifically. It is easy to get swindled by sentimentality.

Let us apply mind for the solution of the problem scientifically and intelligent analysis of the issue. Dangling sword may serve some political ends but it will also end democratic norms and culture. In our eagerness of cleaning let us not throw the baby along with dirty water. Let us not see the issue from glasses of different colours viz red, saffron, green and many other colours found with different political shades. If a compatible system of appointment based on the generic principles as suggested could be adopted at least for the chiefs of important Autonomous Institutions, and LC/LB are Constituted, a lot of administrative malaise affecting the Country could be fixed.

Many issues arising from the proposed structure have not been touched. They need detailed analysis and consideration. Just bare minimum postulates have been given to lay bare the direction in which a possible solution may lie. The proposal is totally apolitical.

Total structure at all levels starting from Natural Lokpal Commission downward has been shown in Appendix-2.

APPENDIX-1

1. **Appointment of CJI:**
   Eligibility: 7 Senior most judges of SC
   Mode: Election by Election Commission of India.
   Constituency: All retired and serving judges of SC and all HCs.
2. **Chief of CBI:**
   Eligibility: 7 Senior most DGs (from IPS)
   Mode: Election by Election Commission Constituency: All IPS officers retired and serving.
3. **Judges SC:**
   Eligibility: All Chief justices of HCs.
   Mode: Election by Election Commission

Constituency: All Supreme and HC judges retired and serving.

4. **CJ of High Courts:**

   Eligibility: 10 High Court Judges for each post in order of Seniority.

   Constituency: All judges of SC and HCs retired and serving.

5. **Judges of HC:**

   Eligibility: 10 District and Sessions Judges in order of Seniority all over India for each post.

   Mode: Election by election Commission

   Constituency: All District and Sessions Judges of the Country, Judges of HCs retired and serving.

6. **NSA:**

   Eligibility: Secretaries to the govt. of India and Chief of Army, Air Force and Navy.

   Constituency: All IAS officers upto JS serving or retired and all Major General Rank Officers of the Army Navy and Airforce, Serving and retired.

7. **Chief IB:**

   Same as CBI.

8. **Chief of RBI:**

   Eligibility: All the Chiefs of Nationalized banks, Renowned Academician from India and Abroad.

   Mode: Election by Election Commission.

   Constituency: To be decided.

9. Similarly, Mode of appointment could be formulated for Election Commissioners (Including Chief, Chief of CAG, CVC and other Autonomous bodies to insulate them from external pressures to run Democracy according to Rules.)

APPENDIX-2

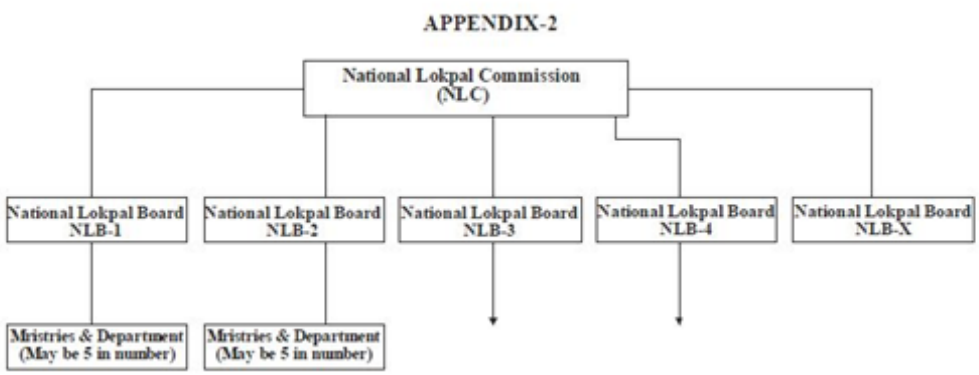

1. Chairman; Retired CJI. to be elected by the Constituency of SC and High Court Judges serving and retired.
2. Member: Retired Cabinet Sectary. to be elected by all IAS serving and retired.
3. Member: Retired IPS at the level of Director General. to be elected by all IPS serving and retir ed.

4. Member: Retired CAG of India. To be elected by all Audit and Accounts Service officers serving and retired.
5. Member: Retired Vice Chancellor or academician from the constituency of academia, serving and ret ired Vice-Chancellors.
6. Member: Eminent Industrialist. To be elected by Industrialists/Businessmen.
7. Member: Public man. To be elected by members of Lok Sabha and Raj Sabha, one each.
8. Member Secretary Secretary Home ex officio, or officer of similar status.

Goods and Services Tax: Benefits and its Impact on Indian Economy

Sadanad Gupta
(JRF, Research scholar)
(University Deptt of commerce & Business Administration T.M.B.U. Bhagalpur)

Introduction

The greatest tax reform in the history of the world, the Goods and Services Tax (GST), is now a part of the Indian economy. A tax known as the Products and Services Tax (GST) is levied in the United States on the production and sale of products and services. The tax applies to every stage of the production process. GST is charged to both the customer and the producer. It's a tax that varies according on where you travel. This means that GST will be taken from the customer at the time of purchase. The GST notion was initially conceived between **1999 and 2000.** According to the 12th Finance Commission, the **Kelkar Committee** suggested enacting GST in 2004-2005. GST implementation before **1 April 2010** was recommended by Finance Minister P Chidambaram in February 2006 based.

The Constitutional Amendment law for GST was approved by the Parliament on **August 8th, 2016,** and more than **15 states ratified the law.** Early September, and it was put into effect (**Prabhash K. Dutta 2017**). **On July 1, 2017,** at midnight, the Goods and Services Tax was officially implemented. A historic midnight session of both chambers of the parliament (**30 June–1 July**) that was held in the Central Parliamentary Hall served to commemorate the launch. Since the GST was implemented, all registered individuals have been required to submit monthly returns by the twentieth of the following month.

On July 1, 2017, the Goods and Services Tax, or GST, went into force. With the tax, all existing indirect taxes would be replaced with a single, all-encompassing tax. Based on the final destination of the products and services, the Products and Services Tax (GST) is a consumption tax (**Bhushan Satya**). The GST, or goods and services tax, is a single tax that is levied on the transfer of products and services from the producer to the final consumer. In short, it's a tax that only applies to value addition, with input tax credits being transmitted to later stages of

value addition, meaning that the final recipient of the tax burden would be the consumer of the goods or services. The GST (Goods and Services Tax) has a standardized taxing structure. Own commodities or products, such as gold, precious stones, and semi-precious stones, have a different tax rate than others. These goods are subject to special tax rates. Luxury vehicles, cigarettes, fizzy drinks, and other items are subject to a 22 percent extra cess. All indirect taxes were unified under GST, including the central excise tax, service tax, VAT, and entertainment tax.

GST advantages

Value Added Tax (**VAT**) was replaced by the Goods and Services Tax (**GST**). It is an assessment on goods and services produced, used, and sold in India. All indirect taxes imposed on goods and services by the federal government and state governments were replaced or unified. Long-term profits are given priority under the Goods and Services Tax (**GST**). Numerous industries have profited from this new method. Some advantages of the Goods and Services Tax (**GST**) include the following: -

1. This method aided in the reduction of tax evasion.
2. Control over the circulation of black money
3. Due to a lower burden of taxes, there is a reduction in overall costs.
4. Goods and Services Tax (GST) merged all the indirect taxes into one. This made the tax system easier and simpler for all service and business.
5. The Goods and Services Levy (GST) consolidated all indirect taxes into a single tax. For every service and business, this made the tax system easier and simpler.
6. The Goods and Services Tax (GST) decreases non-receipted sales and lowers the incidence of corruption.
7. Not only removal of cascading tax effect, i.e. tax on tax but also Increase in the production of goods and services
8. Expected to increase the revenue of the government.
9. The burden has been decreased on the final taxpayer, i.e. Consumer at the end.
10. Removal of multiple taxations.

GST Negative effect

Value Added Tax (**VAT**) was replaced by the Goods and Services Tax (**GST**)**.** It is an assessment on goods and services produced, used, and sold in India. All indirect taxes imposed on goods and services by the federal government and state governments were replaced or unified. Long-term profits are given priority under the Goods and Services Tax (**GST**)**.** The benefits of working hard for the future are not without drawbacks. The Goods and Services Tax (**GST**) has a number of downsides, including the ones listed below:-

1. The Goods and Services Tax (GST) has increased the cost of transactional fees between banking institutions. Transaction costs have been raised from 15% to 18%.
2. The Goods and Services Tax (GST) has increased the cost of insurance premiums.
3. It has had an adverse effect on the real estate market. Because of the Goods and Services Tax (GST) (GST). The price of real estate has increased from 8% to 12%. It is anticipated, however, that it will not endure in the long run.
4. Because the Goods and Services Tax (GST) excludes fuel, the price of petrol constantly deviates from the principles of commodity unification.
5. The Goods and Services Tax (GST) has progressed to a more complicated structure for company owners.

GST expected economic benefit in India

It eliminates the cascading impact of taxes, i.e. it eliminates tax on tax. Goods demand and consumption are expected to rise. VAT, CST, Service tax, CAD, SAD, and Excise are among the bundled indirect taxes that have been eliminated. When compared to the present tax system, there will be less tax compliance and a simpler tax policy. Manufacturing costs are reduced as a result of decreased taxation in the manufacturing sector. As a result, consumer goods prices are expected to fall. Lower the burden on the ordinary man, i.e., the general public will have to spend less money to get the same expensive goods sooner. More demand will lead to increased supply. As a result, there will be an increase in the production of products. Control of black money circulation, as the system used by merchants and shops would be subjected to obligatory scrutiny.

Review of Literature

The purpose of this article is to go through the current literature on GST and its effects on the Indian economy.

Dr. Agrawal Yogesh Kailashchandra (2019) GST has both positive and negative consequences on the Indian economy, claims his study, **"Goods and Services Tax and Its Impact on the Indian Economy."** According to the study, the GST system is set up in a way that it is expected to generate a sizeable amount of revenue for both the federal and state governments. In the long run, it will be beneficial for enterprises, corporations, and service providers. It will improve indirect tax collection transparency, which would be advantageous to both the Indian government and its citizens.

Sandhu vikram and Atwal Heena (2019) Since GST is still in its early stages, it has its own unique set of problems and difficulties, according to the study "Goods and Services Tax: Issues and Challenges in India." However, if this system is implemented appropriately and effectively, it may help to improve the financial and economic situation of our nation.

Kumar Mohan R. (2019) As he considers the "Impact of Goods and Services Tax on the Indian Economy," he comes to the conclusion that GST will also lessen the cascading impact of taxes. In the upcoming years, India is anticipated to have a substantial impact on the world economy. GST is anticipated to be adopted not just inside the country but also in nearby nations and advanced economies throughout the globe. It won't be lovely and simple unless the entire country cooperates to make it a success. The new taxing system has a number of other consequences on the economy in addition to the present one that might help firms prosper.

M. Rajeshwari M. Shettar, (2018) In their study titled "Public Awareness, Knowledge, and Understanding of GST in India," the researchers talk about the general public's awareness, knowledge, and comprehension of GST in India. According to the conclusions, the government should properly plan and get ready for the GST's successful implementation, public education, and community involvement. The purpose of GST is to make the current indirect tax structure simpler to comprehend and adhere to.

Objective of The Study

This essay aims to draw attention to the economic costs and gains brought about by the introduction of the GST. The report also aims to determine the anticipated pace of economic

growth following the GST. The study attempts to draw a conclusion on how it might disrupt the economy in the long term and benefit it.

IV. Methodology of the Study

The GST and its impact on several Indian economic sectors between **July 1, 2017,** and **July 1, 2021** are the main topics of the current study. The method is simple and analytical, mostly using secondary data sources. The data was gathered from a number of sources, such as the Economic The survey, MOSPI, pertinent websites, government publications, national and international journals and articles, publications, conference papers, government reports, newspapers, and magazines that concentrated on different facets of the tax structure and GST.

V. GST Effect on the Indian Economy

In the long run, the Goods and Services Tax (GST) is tremendously advantageous to India's economy. The Goods and Services Tax (GST) has a benefit due to taxation's universality. It incorporates all indirect taxes that were in place in India before the Value Added Tax (VAT) was put into place.

The Goods and Services Tax (GST) gives the commercial sector transparency, enabling it to grow and become more powerful. More employment will be created as the business sector expands, which will eventually lead to a decrease in the tax burden.

VI. Conclusion

The current article examines the Goods and Services Tax **(GST),** India's most significant reform. The Indian economy was anticipated to benefit from the introduction of **GST,** which was expected to boost economic growth, capital investment, expenditure, consumption, and employment. The administration is working to establish a "One Nation, One Tax, One Market" structure in the nation. The research shows that the GST has had a mixed impact on the Indian economy. In the financial year **2018-2019,** the total income collected was Rs. **1177371** crores. The overall collection for the fiscal year **2019-20** rose by 3.8 percent to Rs. **1222132** crores. However, in the fiscal year **2020-21**, overall revenue fell by Rs. **1012902** crores.

Reference

1. **Hayes, J. D., & Pulford, D. J. (1995).** The glut athione S-transferase supergene family: regulation of GST and the contribution of the lsoenzymes to cancer chemoprotection and drug resistance part I. *Critical reviews in biochemistry and molecular biology, 30(6),* 445-520.
2. **Hayes, J. D., & Pulford, D. J. (1995).** The glut athione S-transferase supergene family: regulation of GST and the contribution of the lsoenzymes to cancer chemoprotection and drug resistance part I. *Critical reviews in biochemistry and molecular biology, 30(6),* 445-520.
3. **Dani, S. (2016).** A research paper on an impact of goods and service tax (GST) on Indian economy. *Business and Economics Journal,* 7(4), 1-2.
4. **Vasanthagopal, R. (2011).** GST in India: A big leap in the indirect taxation system. *International Journal of Trade, Economics and Finance, 2(2),* 144.
5. **Sehrawat, M., & Dhanda, U. (2015).** GST in India: A key tax reform. *International Journal of Research-Granthaalayah,* 3(12), 133-141.
6. **Landi, S. (2000).** Mammalian class theta GST and differential susceptibility to carcinogens: a review. *Mutation Research/ Reviews in Mutation Research, 463(3),* 247-283.

Śrāddha: Ideology and Social dynamics in Ancient India

K. Prasant Shekhar
Teaches history at the University of Delhi.
****Dr. Beauty Bhagat***
She is Delhi based independent scholar.

Death although an eternal fact is not necessarily implies termination of one's life. In some cultural pattern death considered as a transitional stage, a *rite de passage:* a stage between decampment of the ubiquitous vicissitudes of human life and enters into a new modality of being beyond. Funeral rites from this perspective serve as a mechanism facilitating such transition. Occurrences of death coincide with beginning of dismal period for the living including imposition of special duties both individually as well as collectively. Since it is the object of collective representation it invariably has special meaning for the social consciousness.

Traditionally, there is fair degree of uniformity in the Hindu rites at the time of death and the procedures adopted for *antyesti.* Analogous to this is the fact that sequences of rites to be performed for the departed *(Śrāddha)* where it is retained follows exclusively the Vedic standards: in actuality, pertained with the *antyesti* and the *Śrāddhas* rites, there is a continuity from Vedic models, prefigured in the *Samhita* and the *Brāhman,* particularized in the *grhasūtra,* and then conveyed in the similar manner in *dharmasāstra* literatures. Despite such remarkable continuity, the answer to the question "where does a Hindu go when he demise?" varies considerably from preceding to next period. This question quite often rephrased as

"*Who* is a Hindu after death?" For any riposte necessarily thereby vocalize the monument of stages which a deceased one had to traverse between the expiation in mundane world and eventual acceptance among their ancestors. This paper shall concentrate three important dimensions of *Śrāddha*: patterns of behaviour and ritual toward ancestors; nature of these ancestral rituals or conflicting vis-à-vis accommodative patterns in ideological and practical purposes; and socio-economic implications of these ancestral rites.

I

Pertaining to the first one, there is perspicuous questions of defining who are an ancestor as well as ascertaining of exact nature of the rituals directed exclusively at ancestors. Apparently an ancestor is a dead relative. Notwithstanding all dead relatives are not ritually considered ancestors. A natural corollary of such observation is the fact that death and kinship though necessary but not sufficient conditions for someone befitting an ancestor: Ancestorhood then contemplates a ritual relationship between the deceased and the living one which in turn has significant dimensions in terms of religion, social, economic as well as legal.

Death alone nevertheless does not qualify a dead relative to be an ancestor. Rather an ancestor is ritually constructed among recently dead relatives invariably a parent. The ritual process more specifically in Hinduism may cover up to one year which finally conclude with a rite usually referred as *sapindikarana* or *sapindana* or "Creation of the *sapind*" relationship. This rite tends to establish the ritual bonds among the generations of those who *offer* and those who receive *offer.* The *offer* or *pind* is a symbolic representation of processed food into a ball for the nourishment and promotion for *pitr.*

Traditionally *pitr* a Sanskrit word literally means the father. The plural *pitarah* at the same time include the earliest mythological ancestors of human being as a whole and thus expands the social circle. Such expansion for our purpose demands exclusion, occasion no ritual. Nor are many deceased kin as children, unmarried women as well as those who suffered ritual or social disabilities. Even those members of kin who became ascetics too excluded from being ancestors: such individuals have not been fully incorporated into the social order, which therefore remains largely unmoved by their deaths for it is 'not as the extinction of animal life that death occasions social beliefs, sentiments and rites....since society has not yet given anything of itself to the (new-born) child, it is not affected by its disappearance and remains indifferent' (Bloch et al: 1987: 4). Yet secondary offerings made to many not excluding deceased mother and other departed relatives both male and female from maternal and paternal sides, primarily ancestors considered are father, paternal grandfather and paternal great-grandfather.

That upon death a person enters into a liminal period of impurity and danger for a deceased one as perceived stands suspended between this life and the next one, commonly referred as *preta.* This state of *preta* varies-from a year in earlier phase to merely twelve days now and thereby greatly reduced the period of impurity. This period of ten or eleven days principally is the ritual construction of a transient body for the deceased: 'and each day of rites results in a new portion of the *preta's* intermediate body, the head being created on the first day, then in succession the neck and shoulders, the heart and torso, the back, the stomach, the thighs and

bowels, the lower legs and skin, the knees and hair, the genitals, and on the tenth day of the offerings, the *preta* receives digestive powers so that the sufferings of hunger and thirst now[2] experienced by the "body of nourishment" duly created may be allayed by continued offerings of *pindas* and water from the living'.[3] This body as perceived would directly ferry the departed to the helm of ancestors and thereby accrediting one to partake in the foods offered by the living descendants. The rites conducted during first ten or eleven days commonly referred as *nava-Śrāddha*.

In critical terms to emigrate from mundane to the world of ancestors in order to secure a role of *pitr* among his own *pitarah,* there is need for assistance of the living descendants. For, this route passes through detrimental condition created by disembodied spirit.[4] Moreover a proper body and supply of adequate nourishment are yet another set of requirements: in tradition approves a yearlong daily ritual activity from the day of death to the day of the *sapindīkarana* for release from the state of pretahood. The *sapindīkarana* gradually reduced to twelve days corresponds twelve (lunar) months of a year. On account of prolonged period of *sūtaka* (impurity) fear of death of the eldest son or other kin serving as the *yajamāna* for the deceased and thereby a truncated ritual would not help break the pretahood seems to be another concern forcing to re-rationalise entire ceremony. The concerns for ritual purity and pollution can better serve by means of shorter duration of *sūtaka* emerged yet another rational. Yet another mechanism adopted by ritual texts apparently omission of the cremation and *pre- sapindīkarana* rites, for, these were acknowledged so inauspicious and in many others, the subject append a separate manual.

The three generations as represented in the form of *pitr* occupy the three-layered cosmos alongside the divinities. These *pitr* appears to be "on call" when eleven *Brāhmina* required attending the sixteen *ekoddista* rites condensed on eleventh day: the fathers appear as the eight *Vasus* corresponding to number of living surrogate *Brāhmina* taking part[5] ; on the other hand, the grandfathers-in the forms of *Rudras* and *Ādityas,* leaving their abodes in mid-space and heaven, to attend ritual once called by to receive the *pinda*.

There is another significant point in terms of differences between cohesiveness among these three *pitr* and those of bygone and forthcoming days. If the *preta* enduring a symbolic year of *nava-Śrāddha* believe to exist in the dawn of death, then the fullest potency of the day belong to the cohesive unit of fathers with the *Vasu, Rudras* and *Ādityas* on the one hand, and on the other, twilight belongs to three preceding generations. Further, these deceased of remote past yet venerable in general included albeit nominally in the sevenfold *sapinda* lineages with the *yajamāna* and the intermediate *pitr.* Imperatively, these remote pitr stands at periphery of dissolution to other forms of life wherein the doctrine of *samsāra* nevertheless contrastive

with Purānic ideologies for sojourn of an individual in heaven and hell appears to be not so much distinctive.

The foundation of such cosmogonic conception may observe goes as back as the Rgveda itself-the funeral hymn (X.15.1) and it declares,

> *'Let the nearer one rise up, up the further, up those in the middle-the forefathers deserving of Soma'*

Bearing the pressing of Soma thrice a day in mind, there is a sixteen fold symbolism or association of the *Śrāddha* with the lunar cycle, it is said elsewhere *Śatapath Brāhmana* (ŚBr. IV.3.5.1):

> 'Now there are three kinds of gods-the Vasus, the Rudras and the Ādityas. Between them the press-feasts are divided: the morning pressing belongs to the Vasus, the midday pressing to the
>
> Rudras, and the third pressing to the Ādityas. But the morning pressing belonged to the Vasus exclusively, and the midday pressing to the Rudras exclusively, and the third pressing to the Ādityas conjointly (with others)'

Further, a ritual text enumerates a sacrificial schema-the ritual construction of the fire-pan (ŚBr.VI.5.3.5) which pertained with *pitr* in the three worlds reflecting cosmographic perceptions of death and birth. Here the cosmos is recreated by the yajamāna as a replica of divine *loka*-on the bottom is the earth made by the *Vasus,* followed by mid-and top-layer created by respectively the *Rudras* and the *Ādityas,* and says further that the yajamāna completes the fire-altar by adding the fourth layer, the *Viśvedevāh* and thereby represent four quarters of the space. Concomitantly, the atman (ŚBr.VI.5.3.5) of Agni which at once happens to be yajamāna or *Purusa* or *Prajāpati* apparently composed by the three world in addition to the fourth one, the transcendent.[6]

The *Rgveda* moreover provides yet another relevant dimension. Although in later mandal, the *Vāc* (X.125) tends to frame her association with other divinities which ultimately connected with sacrifice for *pitr:* a ritual speech by the *Vāc (ahám)* that brings the *Vasus, Rudras, Ādityas* and even *Viśvedevāh* to the *(Śrāddha)* sacrifice (vss.1a-b) and carries Soma to them (vs. 2a) as a totalizing project:

> *'ahám rudrébhir vásubhiś carāmi ahám ādityair utá viśvádevaḥ|' (I [Vāc] roam with the Rudras and the Vasus, I [Vāc] with the Ādityas and the Viśvedevāh)*
> *'ahám Sómam āhanásam bibhami...(I [Vāc] carry the swelling Soma....)*

Further, vs.7 narrates about ritual speech *"brings forth the pitr"* even at the highest level wherein ancestors of bygone days abode which invariably implies the remote realm of *Viśvedevāh*.[7]

'ahám suve pitáam asya mūrdhán mama yónir apsú antáh samudré|

The liturgical longevity invariably ensured by means of continuous repetitions of such early

Vedic conception in the grhyasūtras and other texts like the *Visnudharmaaśāstra*. The *Kātakagrhyasūtra* in a series of prayer addressed at the *pitr* in earth, mid-space and heaven equates *Vāc* and *amrta* (immortality) with *ūrj* (the sacrifice of self-strength), calls it as essentially of *pinda*- balls of white rice, and water. Critically, *pinda* are not Soma but its association with Soma-mantras increased its vitality to the extent of re-creativity.

The ritual of *sapindīkarana* usually performed on the twelfth day or the death anniversary help unite the *preta* with *pitr.* In one of rite, four *pinda* including one for *preta* and rests three for father, grandfather and great-grandfather of *preta* were prepared. At this moment *yajamāna* recites mantras taken from the *Rgveda* that includes verses from tenth mandala (X.191.2-4), as well as repeating twice the verses taken from *Vājasneyi Samhitā* (VS.XIX.45-46) which collectively accentuate on unity and equality of ancestors. This is followed by breaking of rice ball of *preta* into three parts and it's blending with three rice balls of their *pitr* as well as dividing the water from bowl of preta into three and its subsequent mixing with the water of cups of *pitr.* This process of ritual union helps transform *preta* into *pitr*. This is the archetype *sapindīkarana* which maintains triad by including newest in the cosmic and ritual hierarchy, while pushing his great-grandfather into the realm of remote *pitarah* wherein he regenerate as one of the *Viśvedevāh,* and thereby strengthen the argument that the immediate paternal forefathers are ritually most important *pitr.*

Pertaining to second question on the nature of ancestral rituals, they are many believe it not as a part of the worship: that the practice of displaying this by appropriate acts, rites or ceremonies. From this perspective, the Hindu rituals of ancestor despite having componentsgreater or lesser degree, of veneration and petitions, did not qualify as an act of worship. In Brahmanical ancestral rites primarily intended for the benefits of the deceased ancestors usually not considered as part of divine worship. These rites simultaneously establishes a link between the deceased and the living kin members by means of offerings integral to rites concerned, for, *pitr* perform many important roles including fertility in the living conditions of their kin and *pitr* at the same time depends on the offerings provided by their kin members: when a sole remaining male member decides to become a celibate ascetic and thereby threatening cutting off continuation of the family line, the rank of ancestors become mournful.

The *pārvanaśrādha* is the principal ancestral ritual: this is a monthly rite performed at new-moon days involve offering to three ancestor-father, paternal grandfather and greatgrandfather. Another important feature includes feeding the invited *Brāhmins* who inevitably represent the *pitr* and offering of three *pinda* that correspond the ancestral triads.

It is usually acknowledged that all other forms of *śrādha* are its *vikrti* (modification). It is in part because of the fact that the Vedic rituals greatly fell into disuse and thereby the śrādha accepted as a norm to establish ritual contacts with the *pitr* and living kin members.

During medieval time, the literature of *śrāddha* gradually added not merely gods and other things like goblins, but also other relatives including even to oneself. Further, *śrāddha* were to be offered on number of occasions: the birth of son, marriage ceremony, pilgrimage or any other significant calendrical event. In this context it is apt to quote Kane (1930-62, IV: 38283):

> *'...the 96 śrāddhas to be performed in a year...are-12 śrāddhas on the 12 Amāvāsyās in the year, the four śrāddhas on the yugādi days, the fourteen śrāddhas on the Manvantarādi days, the śrāddhas on 12 sankrānti days (i.e., the sun's apparent motion from one sign of zodiac to another), the 13 śrāddhas on the Yoga called Dhrti (Vaidhrti) and the 13 śrāddhas on the*
>
> *Vyatīpāta yoga, the 16 Mahālaya śrāddhas, the four Anvastakā days, the four Astakā days, and the four days (i.e., 7th of dark half of the months of Hemants and Śiśira) of the day previous (to the Astakā)....'*

These classifications adopted and enumeration tends to suggest the exaggeration the śrāddha ceremony had acquired in due course of time. Pertaining to Manu, Kane (1930-62, IV: 383) observe that he at first prescribe (III.122) an elaborate *śrāddha* on the *Amāvāsyā* of each month but retreat later on (III.281) by saying that an elaborate *śrāddha* may perform on three *Amāvāsyā* in a year and one should perform every day the *śrāddha* as one of the five daily sacrifice. Devala moved further by saying that an elaborated *śrāddha* may perform only once in a year.

As observed it is apt to acknowledge that the period of composition of the *Brāhmina* texts-*Aitareya, Kausītaki, Śatapath* among others,-form a crucial juncture in the development of myths, rites and symbols pertained with death and rebirth. This is followed by adaptation of *Purusa-Prajāpati* cosmogonic model to *individual's* post-cremation passage on the one hand conceptualized and concretized liturgically on the other. Same time it is here that a full bearing of cosmically potent Soma rites and mantras were brought in on human regeneration and perpetuation.

II

Pertaining with questions of conflicting vis-à-vis accommodative patterns in ideological and practical purposes, reveals the ideology for death and the dead goes as back as the Vedic period. As observed earlier, the departed necessitate ritual support to sustain in a new state, and once fulfilled they need a continuous nourishment to be provided by their children. In fact as observed by Newell (1976:9) afterlife of the departed conditioned by if at all to morality.

This perception of death and afterlife stands in sharp contrast to the later yet dominating ideology of the *"karma*-rebirth": that a rebirth into a life form and conditions following death determined by accretion of karman of previous birth (Obyesekere 2002:). In different words, it is good or bad deed of previous lives determines the concerned forthcoming birth. This perspective asserts individual's autonomy in terms of shaping of post-death conditions along with supremacy of morality in due process. Despite a drastic changes in the ideology pertaining to death and afterlife that happened gradually in due course of time, the pattern of ritual practices apropos of death and kin members of deceased so far as the Brahmanical traditions are concerned remain unchanged.

Such contradictions as observed between ritual practices and the new afterlife ideology appear to be so strong that even Hindu theologians of medieval times attempted to reconcile the opposites: it include questions like what are benefits food offer to a departed who now reborn as human, an animal, or else one?, what a role rituals play in life of human being when the karma of the concerned already determined theirs afterlife? The reconciliations often happened by reinterpreting significance of ancestral rituals but not by means of changing the form of ancestral rites.

Jainism appears to be either earlier or at the same time, the Buddhism and Upanisadic thinkers, developed their own eschatology, and thus revealed their worldview on a movement from *śrāddha* to karman: for on account of so called illogical idea of one's merit affecting another and thereby comprehensively rejecting the basics of the karman doctrine, and thus refusing indulge in *śrāddha* proceedings. They practiced what we count as an individual soul can experience outcome accruing only to actions the body *itself* performed. The *Cārvākas* (Cowell 1882: 10) too were critical on the issue of *śrāddha*:

> '(I)f the śrāddha produces gratification to beings who are dead, then here, too, in the case of travellers when they start, it is needless to give provisions for the journey....'

The Buddhist on the other hand adhered nevertheless more closely with the Vedic model rejecting *śrāddha,* developing their own model in the form of idea of transfer of merit. This

model seems to be a modified adaptation of otherwise prevailing Hindu behavioural pattern concerning afterlife. In earlier Buddhist tradition, merit transfer by means of giving gifts to monastic community was a practical and popular expression that as it appears *"theoretically legitimate, cosmologically potent, and socially redeeming"* (Holt 1981: 2). Gombrich (1971:

212) at the same time observe that "...throwing a little food outside the house...that is for the *pretas* must be the ancient explanation...."

An aforesaid point poses a question on significance of such contrariety and juxtaposition between the ritual world represented by *śrāddha* and the ideological realm of rebirth-*karman*. In this pretext many scholars like Berger observed about presence of many trends in religious words including Indic tradition. Based on the context of practitioners and believers the explanatory schemes differ even of a single passage taken from scriptures. Using such insights for the ancestral worship one axis represents dominance of one schema and another operates eventually on other axis and both of them serving functions distinctive to each other. This seems to be one among many reasons that rebirth-*karman* schema does receive neither an all-inclusive ritual recognition nor it was answered in depth.

Traditionally one way to contemplate such issue is to (re)examine functional dynamics of ancestral ritual. The primary aim nevertheless of such ancestral rites is to abetment of the ancestors but there are other many. Even after that there are many unanswered questions: if we accept its primary purpose uncritically, there should be similar sorts of ritual(s) directed at all ancestors; anatomy of ancestors directed as beneficiary of such rites reveal on the one hand a complete exclusion of someone, and inclusion of many others like female, maternal ancestors as an afterthought on the other. Why so? ; and also why ancestors beyond the third generation emaciated from ancestral ritual schema? Fundamentally the *śrāddha* is directed against the father, paternal grandfather and parental great-grandfather reflects schema of being patrilineal in nature and thereby suggestive of hefty functions. While doing so the *śrāddha* tend to forge a relationship between the departed and the living being eternally, a bond which may translate in terms of ancestral property which highlight simultaneously a duty towards prosperity of living generation.

III

Aforesaid points make it clear that *sapindīkarana* while transporting the departed to the domain of the fathers establishes an effective ritual triad of fathers, grandfathers and greatgrandfather. Simultaneously ritual praxis involved therein necessarily creates a ritual obligations on the living in general but a son more specifically to pay ritual offering referred as *śrāddha* each month to that triad which in due course create an eternal social relations called

as *sapinda.* In this way, *sapinda* as a ritual process tend to create an important social relation. To quote Kane (1930-62, II: 452-55; 472-77),

> *"...sapinda relationship is of special importance in three matters, viz. marriage, inheritance, and āśuca...the prohibition against marriage with a sapinda girl applies to all Varnas including the śūdra....*

In different words, *sapinda* inevitably refers to a group of people created thereby related to each other for they are impelled to offer *pinda* to a common ancestor.

That one of the most self-assertive effect of *sapinda* is creation of an exogamous group. It differs from another similar categories-*gotra* and *pravara,* in terms of their closeness with kinship: *sapinda* unlike other similar categories is the closest form of kinship and therefore a rigid exogamous relationship.

Ritual purity, one of the central planks of Indian religion and society, is yet another area associated directly with *sapinda*: in fact people belong to a *sapinda* group had common level of purity and thereby they all irrespective of *varna* categories also share proportional level of impurity. Kane (1930-62, IV: 277-280) while quoting many ancient literary sources nevertheless reveal gender dimension observe:

> '(I)f a child died before it struck teeth the sapinda had only to undergo a bath while the parents had to observe āśuca for three days if the child was a son and for one day if a daughter...if death occurs between Cūdā (or three years) and upanayan or marriage (in the case of girls) the sapindas including the father have to observe āśuca for three days and samānodakas become purified by a bath alone...In the case of śūdra dying after three and before marriage or 16 years the āśuca is three days for all sapindas....'

Inheritance is yet another important dimension of *sapinda* observed in many cultural patterns (Newell 1967: 9). This dimension that includes traditional Hindu law further elaborated by many *(dāyabhāga;* Kane 1930-62, III: 543-769; Rocher 2002). That whoever took the estate was saddled with the responsibility of performing *Śrāddhas* for the benefit of the soul of the deceased. It is more explicitly pronounced by the Visnu Dharmaśāstra (XV.40) that whoever inherits the estate (of the deceased) has to offer pinda to him (yaś cārthaharah sa pindadāyī).

It may infer from what the *Visnu Dharmaśāstra* (XV.40) tend to suggest that the holder of ancestral property has the obligation to feed those concerned who rely on that estate: not only the living but also deceased members of the family. Again it is appropriate to consider a fact that the offering of the *Śrāddha* made to a deceased owner of property in turn legitimize

the status of current owner of the estate. This is significant more specifically when a society practices patrilineal norms and *Śrāddha* is being offered to them: the ritual triads in traditional Hindu society claim *Śrāddha* is father, paternal grand- and great grandfather who in turn also owners of the property now inherited and enjoyed by one who performing

Śrāddha to them. The public offering of *Śrāddha* to these previous owners is an open articulation as well as ritual expression of the legitimacy of inheritance by the present holder of ancestral estate. By this way ritual serve as a mechanism tied closely with law and legality.

Yet another important dimension is related to recognition of right of someone beyond a son or direct descendent inheriting estate: 'If there be no son or grandson left for continuing the line, the daughter's sons shall take the wealth, for in regard to the obsequies of ancestors daughter's son are regarded as son's sons.'

As observed by Berger (1969) that the world created by human being inherently unstable and its affirmation thereby needed in perpetuity to devise strategies of legitimation: Against gradually increasing threat perspective by asymmetrical accelerating trend of asceticism that promoted celibacy and the withdrawal from family life, the social institutions re-visited aimed at to regulate sexual activity and thereby ensuring the continuity of ancestral line is necessarily a strategy drafted. In this pretext the concept of *rna (*debt) more than frequent used in traditional India as a tool to legitimize numerous social institutions and obligations. For instance it is repeatedly maintained in the *Samhitā* texts like *Taittirīya* (VI.6.10.5) and *Śatapath Brāmana* (I.7.2.1-6) that it is duty of every man to marry and procreate. According to the concept of *rna* (debt) that a man born with a triple debt-a debt of sacrifice towards divine bodies, of children to ancestors, and of Vedic debt towards seers. For sacrifice and procreation were legitimate only within the institutions of marriage, the concept of rna thereby legitimized marriage and therefore on the one hand the life of a householder and on the other defended them against all kinds of onslaught attempted by ascetical ideologies and institutions therein. This concept visualize some kind of idealism that in order to secure *moksa* (salvation) from cycle of existence, a man require to free themselves from the debts he has incurred from very onset-his birth as a male human being.

There are many instances in the forms of myth showing consequences of failure in execution of the concept of rna: in one instance ancestors of sage *Jaratkaru* in the *Mahābhārat* (I.41-42) were in unfortunate condition as hanging from their feet in a cave for the sage *Jaratkaru* become celibate ascetic before he had begotten any children and thereby last in their line and consequently his ancestors failed to receive a continuous ritual offerings which they deserve. Apparently it is sage *Jaratkaru* illegitimate behaviour that threatening to end their lineage.

Rather than to prohibit celibate asceticism, later legal literature permitted it with certain conditionality that include paying off three inherent debts. That means it was uncommunicative for those who have fulfilled their sexual incumbency. Moreover the imperative of ancestor worship deliberately fall in the theological domain of debt and hence legitimized the centrality of social institutions of marriage.

Aforesaid survey pertained with ancestral worship inevitably reflect one or different kind of continuity. Such continuity quite often reinterpreted and assigned with new meanings: that each successive generation of contributed effectively. As the Vedic religion developed steadily into classical Hinduism, the rituals of ancestors proportionally acquired central stage in understanding the proper religious life as well as growth and sustaining of new religious experts as a core to this new religious definition serving *sine qua non* in the development of classical Hinduism. Implicit to such development is the fact that this priestly community created simultaneously a sense of *ritual dependency* which in turn affirmed their positions as well as established their livelihood.

In this context there appears to be two tendencies developing together. The growth and consolidation of the new ritual experts while firmly expressed in terms of someone mediating between the divine and the mundane world wishing to propitiate through ritual, they grappled into two soteriologies: on the one hand a successful performance of *Śrāddha*-rites associated inevitably with grant of heaven for deceased and long-life among others for yajamāna and thereby heaven-oriented soteriology and on the other by deploying this mechanism they tried to counter the notion of reincarnation as it tend to dislocate rituals from its centrality. This ritually-centric religiosity in turn shaped the discourse on dharma. Nonetheless in a similar way the Buddhist theologians placed obligations of same quantum on the householders-the primary associations of ancestral offerings like food, clothing.

Despite texts in these two traditions highlights *Śrāddha*-rites as one among several factors conducive for a shift to classical mode of Hindu religiosity, the developments in each of these traditions in the early centuries of the first millennium undertook varying path. The

Brahmanical tradition grappled into two soteriological traditions. The Epics and the Purānas for instance testify uneven and inconsistent efforts for integrating notion of winning heaven by means of rituals into the process of transmigration (Bronkhorst 1998: 246-248; Hill 2001).

At the same time such transition help fertilize the ground wherein the seeds of the continuation of the Brahmanical hegemony were sewn. The *grhastha* were the primary religious consumer with well-defined obligations requiring services of the religious expertsworship of

divinity and ancestors and hospitality, in ancient India. The dharma literature in contrary to Vedic literatures shows gradually increasing concerns pertained with the proper definition of dharma. That is there were sustained efforts to define domain of religious life indicative of concerns for securing their positions as religious expert. Such religious market place driven by religious consumers that also shaped by religious discourses too include competitors like the Buddhism and Jainism. In this context one school of thought tend to understand genesis of the dharma tradition within domain of the Brahmanic tradition (Olivelle 2009) and another school (Bronkhorst 2007) elaborates in detail a complex cultural milieu existed in the second half of the first millennium of the common era and that the Buddhist were not alone reacting against Brahmanic tradition but also numerous groups of Brahmins working intend to define what a Brahmanic word view actually consist of. It is against this background that theologians reconstructed role of religious mediators and also enumerated their appropriate qualifications.

References

1. BERGER, PETER L. (1969). *The Sacred Canopy: Elements of a Sociological Theory of Religion.* New York: Doubleday and Company.
2. BLOCH, MAURICE and JONATHAN PARRY (1982). *Death and the regeneration of Life.* Cambridge: Cambridge University Press.
3. BROCKINGTON JOHN L (1998). *The Sanskrit Epic.* Leiden: E.J.Brill.
4. BRONKHORST JOHANNES (2007). G*reater Magadh: Studies in the Cultures of Early India*. Leiden: E.J.Brill.
5. COWELL, E. B. (1882). *"The Sarva-Darśan-Samgraha on Review Of The Different Systems Of Hindu Philosophy".* London: Trübner and Co., Ludgate Hill.
6. DONIGER, O'FLAHERTY, W. (1981). "Karma and Rebirth in the Vedas and Puranas". In Wendy Doniger O'Flaherty (Ed.), *Karma and Rebirth in Classical Indian Traditions* (pp. 339). Berkeley: University of California Press.
7. GOMBRICH, RICHARD (1971). "'Merit Transference' in Sinhalese Buddhism: A Case Study of the Interaction Between Doctrine and Practice". *History of Religions,* 11, pp. 203219. HILL PETER (2001). *Fate, Predestination and Human Action in the Mahabharata: A Study in the History of Ideas*. New Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers.
8. HOLT, J.C. (1981). "Assisting the Dead by Venerating the Living: Merit Transfer in the Early Buddhist Tradition". *Numen,* 28, pp. 1-28.
9. JAINI, P. S. (1981). "Karma and the Problem of Rebirth in Jainism". In Wendy Doniger O'Flaherty (Ed.), *Karma and Rebirth in Classical Indian Traditions* (pp. 217-238). Berkeley: University of California Press.
10. KANE, P V (1930-62). *History of Dharamaśātra.* Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute. Vols. I-V.
11. NEWELL, W H. (1976). Ed. *Ancestors.* The Hague: Mouton Publishers.
12. OBEYESEKERE, G. (2002). *Imagining Karma: Ethical Transformation in Amerindian, Buddhist, and Greek Rebirth.* Berkeley: University of California Press.
13. OLIVELLE, PATRICK (2009). "The Semantic History of Dharma the Middle and Late Vedic Periods." *Journal of Indian Philosophy* 32 (5-6): 491-511.

14. ROCHER, L. (2002). *Jīmūtavāhana's Dāyabhāga: The Hindu Law of Inheritance in Bengal.* New York: Oxford University of Press.

15. SHARMA VASUDEVA (1937), *Nārāyan Bhatt's Prayogaratna.* Bombay.

16. SHASTRI, D R. (1963). *Origin and Development of the Rituals of Ancestor Worship in India.* Calcutta.

Footnotes

1. Originally it was perceived a monthly up to a year subsequent to cremation *pinda* offerings in the *ekoddista* pattern. Beyond a twelve lunar months *pinda* offerings after cremation it also includes a three-fortnight offering which usually performed after one-and-a-half months, as well as offerings made on days immediately prior to the first, sixth and twelfth months and henceforth made a total year of sixteen.

2. A remarkable parallel structure may observe in yet other rites of passage: the *Jātakarman* (rites at birth). In both of these cases following the day of birth/death there are provisions for offerings of rice, sesame and other ritually recommended appropriate substances for ten days. Ten days seems to being a homology to the ten "lunar" months long gestation period. Against this background it appears that the completion of the temporary body on the tenth day reflects a kind of intention of rebirth expression. Moreover in both of these cases provisions were made for resumptions of offering fires, the completion of purification and thereby a transition into prescribed ritual activity. Apparently twelve days corresponds to twelve-months of a year.

3. Many of ritual texts like the *Śatapath Brāhmana* (X.5.2.13) uses term *preta* as to indicate 'dead body'. Such meaning however is not adopted by the *Samhitā* texts like in the *śrāddha* sections of *Śānkhāyana-grhasūtra* (4.2.7; 4.3.5-6) and *Pāraskara-grhyasūtra* (3.10.49-55).

4. These eight *Vasus* in turn identified in *Prayogaratna* (pp. 17-18) in following manner:- the *Vasus, Dhruv*a with the pole-star, *Adhavara* with sky, Soma with Moon, *Āpa* with water, *Anila* with wind, *Anala* with fire, *Ratyūsa* with dawn, and *Prabhāsa* with light.

5. In this context, the *Chāndogya-Upanisada* (III.1-10) provides five-point doctrine. This is an expansion of triad as it adds a transcendent pair-the *Maruts* with *Soma* as deity and *Sādhya* having *Brahmā* as its deity as a fourth and fifth layer. In the plan, the five classes appears to be in the east, south, west, north, and the *Sādhya* occupying centre stage or zenith.

6. The *Atharvaveda* (IV.30) rearranges this hymn for liturgical purposes. It differs from hymn of the *Rgveda* in that it tells explicitly about juxtaposition of speech-born Soma and the rebirth of *pitr.*

The Poetic Beauty of Charles Baudelaire's *"Les Fleurs du Mal"*

Dr. Vinay Kumar Singh
Assistant Professor and Head
Department of Foreign Languages
MUST, Lakshmangarh, Sikar, Rajasthan

Abstract

This article aims at bringing out the features that go into making Charles Baudelaire's Les Fleurs du Mal a poetic masterpiece. The poems in this famous anthology are full of powerful imagery and symbols, reflecting the author's inner thoughts and feelings about life and death. Baudelaire often uses nature to illustrate his themes, such as the sea to represent the vastness of life, the moon to represent dreams, and flowers to represent fleeting beauty. He also includes religious symbols such as Christ, St. Peter, and the Devil, to represent the human struggle between life and death. Through his vivid imagery and symbols, Baudelaire paints a complex and evocative picture of the human experience. In addition to all of the elements already mentioned, he brings in a touch of macabre and Gothic horror in the poems of this much celebrated anthology of poems. Death is a constant companion of beauty in many of his poems. The famous juxtaposition of flowers and evil is not just to make the title striking. It rises from the heart of what the poems contain.

Keywords : Charles Baudelaire, *Les Fleurs du Mal,* Romantic Era, French Literature, Death, Misery, Suffering, Decadence, Synaesthetic

I

Charles Baudelaire's *Les Fleurs du Mal, or The Flowers of Evil* is a collection of 155 poems written in French by the poet in the mid-1800s. It remained his most renowned collection and its publication in the 1850s, amid the French Romantic era, garnered considerable attention both in France and abroad. Containing what can be seen as a profound exploration of synaesthetic and strong affective poetic language, this collection is now considered one of the master pieces

of nineteenth-century French literature and has influenced many writers and artists since its publication. Baudelaire's *Les Fleurs du Mal* is primarily characterized by its dark, dystopian, and pessimistic elements. This anthology of poetry deals with themes of death, misery, suffering, and decadence, likely related to Baudelaire's experiences during this period.

Baudelaire uses a number of devices to give *Les Fleurs du Mal* its distinctive poetic power. He employs striking imagery, alliteration, assonance and consonance to create a vivid and evocative atmosphere. The language he uses is lush and metaphorical, and he often draws on literary and biblical references to convey deep emotions and psychological states. He also includes symbols and metaphors as a means of exploring ideas related to exile, love, longing, death, and the beauty of life and nature. All of these elements come together to give the collection an air of melancholy and longing – themes that are appropriate for a work that is preoccupied with mortality and the hidden side of humanity.

Baudelaire's *Les Fleurs du Mal* draws heavily from imagery, both religious and physical, to explore the themes of despair, death, and love. Baudelaire makes use of vivid language to evoke the sounds, sights, and emotions associated with his contemplations on life and death. The imagery of nature is integral to Baudelaire's poem. Throughout the anthology, Baudelaire brings to life the natural beauty of the world, despite its wonderful but ultimately transient nature. The imagery of flowers is perhaps the most pervasive: Baudelaire uses images of budding rosebuds, fragrant violets, and colorful crocuses to evoke the hope and fleeting nature of life. At the same time, Baudelaire also utilizes imagery of things that are dark and menacing, such as thunder, lightning, and storms. These images are associated with his reflections on death and the inevitable end of life. In addition to physical imagery, Baudelaire also includes strong religious imagery throughout *Les Fleurs du Mal.* He often draws on religious figures, such as Christ, St. Peter, and the Devil, to represent himself and other characters in the poem. These powerful symbols offer further insight into the thematic subject matter of the poem as they are used to explore the psychological tensions between life and death. Finally, the imagery of water also plays an important role in Baudelaire's exploration of despair, as it is often used to symbolize the inescapable depths of sorrow.

Crowd, as Benjamin so ably demonstrates, is central to Baudelaire's imagery:

> The presence of the masses informs one of the most famous poems in *Les Fleurs du* mal. In the sonnet "A une passante," the crowd is nowhere named in either word or phrase. Yet all the action hinges on it, just as the progress of a sailboat depends on the wind (184).

La rue assourdissante autour de moi hurlait.
Longue, mince, en grand deuil, douleur majestueuse,
Une femme passa, d'une main fastueuse
Soulevant, balanc;:ant le feston et l'ourlet;

[The deafening street was screaming all around me.
Tall, slender, in deep mourning-majestic grief
A woman made her way past, with fastidious hand
Raising and swaying her skirt-border and hem;]

Vivid images are used throughout Baudelaire's poem "Au Lecteur" to evoke powerful emotions related to art, life, and death. The imagery is often dark and ethereal, yet conveys a clear message. For instance, when discussing the difficulties of being an artist, Baudelaire compares the artist to an eagle who has been wounded and unable to fly: "Tu vois cet aigle captif, qui se lamente et qui gémit,/ Et qui languit dans sa cage avec ses ailes de givre." He also uses representional imagery to describe the emotions of the artist, stating "Quand de son sein divin l'art feconde les humains," which conveys warmth and life that the art creates. He also describes the effects of death as "un ténébreux charnier," which is a rather gruesome image. Through these powerful images, Baudelaire creates an eternal reminder of the inevitability of life and death, and the power of art to transcend them. Look at the following image, for instance:

C'est l'Ennui! L'oeil chargé d'un pleur involontaire,
II rêve d'échafauds en fumant son houka."

["He is Ennui! — His eye watery as though with tears,
He dreams of scaffolds as he smokes his hookah pipe."]

In Baudelaire's poem "Spleen," imagery is used as a tool to illustrate the narrator's emotional state and feelings of hopelessness. For example, the narrator describes himself as feeling "like an old star, exhausted in its course" and being "surrounded by a clammy sea, / Under the same gray sky". The use of imagery conveys the narrator's feeling of being trapped in an inescapable situation, being doomed to endless cycles, and a lack of control. He also compares his emotions to a ship in distress, being chased by a "storm of lies". This imagery emphasizes his feelings of being overwhelmed and powerless in a hostile environment. Lastly, he speaks of being in an anguished "spiritual slum" in which he is "living without a roof, / At the mercy of the tempests and the night". The metaphors of a "roof," "tempests," and "night" accentuate his vulnerability, and his feelings of being in a dark place with no way out. The next section focuses on other prominent devices he uses in his poems.

II

In many of his works, Baudelaire utilizes metaphors to reference a connection between his experiences and the corruption of the modern world. An example of this is in the poem "Au Lecteur" where he writes "The flowers of evil have been cut down." In his poem "Au Lecteur," Baudelaire employs a number of compelling metaphors to illustrate the struggle between societal oppression and the creative spirit. He compares his journey of creative expression to a "lone boat," fighting against a "tempestuous sea." Here, the sea symbolizes the stormy world of censorship and conformity that threatens to submerge his work. He also describes his efforts as sailing "toward unknown regions," a metaphor for the uncharted waters of creativity and innovation. He even likens himself to a raven, "flying in the face of the storm," a symbol of blackness, strength, and defiance of fate. Through these powerful metaphors, Baudelaire conveys the tumultuous journey to follow one's creative muse in spite of social stigma.

The richness of his symbolism can be seen in the same poem. In 'Au Lecteur', Baudelaire uses many symbols to convey his feelings and thoughts. The sea symbolizes the unknown and the never-ending cycle of life. It is used to represent the temporal nature of life and the cycle of transformation. Through the sea symbolism, Baudelaire conveys his message that life is ever-changing and no one is sure of what the future will hold. The swallow symbolizes hope. Its use conveys Baudelaire's message that no matter what life brings, hope is always necessary. He also uses it to signify the light that guides us in the dark as well as "the kindness [we] do not deserve". The moon symbolizes a change in perspective. It is used to depict how one can look upon life from different angles and see it in different ways. The various phases of the moon represent the multiple shades of life. Finally, Baudelaire uses a snake to represent his own past and how life has changed him since then. He considers this transformation to be both good and bad. His use of the snake as a symbol conveys his message that life is not always easy but it is always worth the effort.

There are many themes in the poems of Baudelaire's *Les Fleurs du Mal.* They explore the alienation and urban loneliness of modern life, often depicting how it affects individuals who must confront it on a daily basis. A number of poems in his anthology deal with Baudelaire's jaded view of humanity. He reflects on the ugly aspects of the human condition such as its cruelty and vices. While expressing his dissatisfaction with humanity, the poet also celebrates the pleasures of physical sensations and romantic love, which he often expresses in lush language and imagery. Death and its inevitability haunt many of his poems. He meditates on mortality and the meaning of existence, and contemplates the afterlife. Throughout the anthology

Baudelaire extols the power of beauty to elevate the human experience, and he often associates the attainment of beauty with religious devotion and spiritual transcendence.

Beauty is explored as something complex and subjective. Baudelaire, "the inventor of 'modern beauty'" presents beauty as a subjective experience, stating "Ah! how often, in the depths of night, / Was I, like you, mesmerised by beauty!" (Chambers, 7) He also suggests beauty is ephemeral, comparing it to a "tear-drenched night", both intense and ephemeral. The poem further discusses beauty as something both heartbreaking and irresistible. Baudelaire suggests that beauty, rather than being an absolute, is instead a combination of contrasting elements: "Soft and hard, sweet and sour, light and darkness". As such, Baudelaire ultimately suggests that beauty is something that is difficult to define, and instead lies in the complex interplay between contrasting elements. Baudelaire's themes are reflected in the usage of powerful and gorgeous language, depicting an evolution of religious symbolism, allegory and, hidden expressions of vanity and sadness. A common element throughout the poems is the usage of a unique romanticized tone of melancholic passion. In this way, the poems can be seen to express a search for unity found only in a dream-like realm. His poems' bleakness is balanced with an exploration of human beauty and joy.

Throughout Les Fleurs du Mal, Baudelaire uses nature as a metaphor to illustrate themes of universal human experience—such as love, fear, sorrow, mortality, and despair. Nature and its phenomena and objects corresponded symbolically with things deeper and far removed. "In his poem 'Correspondances', Baudelaire recognises his artistic doctrine and the key to his poetry. Baudelaire's sonnet was to become the manifesto of the Symbolist Movement" (Richardson, 226).

Nature in the collection serves as a reminder of beauty and fragility, and to further emphasize the themes in the work. For instance, one example of nature as a metaphor can be seen in the poem "La Mort des Amants" where Baudelaire compares love to a delicate flower in his opening lines, "Ainsi comme un beau lys mourant/Se flétrit tôt et souffre un sort funeste" (As a beautiful lily,/Fades early and suffers an ill fate). Here, Baudelaire uses the lily to represent the fleetingness of love and mortality—comparable to a flower that wilts and dies, a love affair can also easily and quickly end. In "Le Voyage", Baudelaire uses the image of a stormy sky to represent his inner turmoil. In the poem, he writes, "La brume s'épaissit, un vent de tempête/Y passe en mugissant" (The fog thickens, and a wind of storm/Goes through, roaring). Here, the dark night sky and "wind of storm" metaphorically describe the chaotic and stormy emotions inside of him. His use of nature as a metaphor in *Les Fleurs du Mal* serves to emphasize and deepen the themes of the poems—of mortality, sorrow, despair, and more—and emphasize the beauty and fragility of these human emotions.

"Pensée VIII" explores the concept of beauty while faultlessly weaving in sentiments of melancholia. The symbols used in Charles Baudelaire's "Pensée VIII" include the sun (Symbol of warmth, life, and energy), the night (symbol of darkness, death, and mystery), the sea (symbol of vastness and chaos), and the moon (symbol of dreams, imagination, and reflection). Furthermore, throughout the anthology the poet employs an unrelenting gaze to expose the brutality of humanity, while concurrently creating works of great beauty. This collection of works symbolizes and clarifies the beauty and horror associated with the human condition throughout the universe. The poem's use of vivid imagery and intense language allows readers to feel connected to the works.

Les Fleurs du Mal, written in 1857, contains elements of Gothic horror. Baudelaire has an intense focus on death and the dark side of life. His use of vivid imagery, language, and symbols evokes a feeling of fear and dread in the reader. The descriptions of the graveyard and its inhabitants and the choice of morbid topics such as murder and suicide certainly brings an atmosphere of death and despair. He is not shy of meticulously painting a rotting corpse in his poem "Une Charogne" ("A Carcass"):

> Les mouches bourdonnaient sur ce ventre putride,
> D'où sortaient de noirs bataillons
> De larves, qui coulaient comme un épais liquide
> Le long de ces vivants haillons.
>
> [The blow-flies were buzzing round that putrid belly,
> From which came forth black battalions
> Of maggots, which oozed out like a heavy liquid
> All along those living tatters.]

Using horror and morbidity in his poems, Baudelaire paints a fatalistic picture of the world, forcing readers to confront the difficult realities of life. Baudelaire's poems are heavily concerned with the frailty of life and the inevitability of death, themes which are explored through supernatural and macabre imagery. He expresses his unease with life and his struggle with mortality by using symbols such as vampires, cemeteries, and hell, creating an atmosphere of fear and terror. In this way, he utilizes the traditional conventions of Gothic literature to explore his own personal doubts, fears, and anxieties in *Les Fleurs du Mal.*

The overriding theme of evil in *Les Fleurs du Mal* is of man's dark side and a general rejection of societal norms. Baudelaire crafts a world of immorality, prostitution, and moral ambiguity in the collection, focusing on the flaws that are hidden within in the human character. Satanism is a strong presence within the work, as is a fascination with sin and carnality. Take

his "Au Lecteur" for example. Through this, Baudelaire emphasizes the duality of the soul and challenges the existing moral structures of his day. He hints at a dark world of moral relativism, exploring what lies beneath the realm of society's accepted standards. The dark imagery of the poems often reflects the poet's spiritual battle with his personal demons, creating a vivid landscape where evil reigns supreme. Yet, Howells rightly argues that the poet's references to Satan should not be taken at face value, because they are:

> not proof of a religious faith, but rather disproof of it. Satan fulfils, in Baudelaire's personal mythology, the role of the 'mauvais génie' in Descartes or the ironic daemon who, for Ferrari, presides over nature and history and over our attempts to understand or master them—a way of suspecting, as being possibly deluded at source, the values of democratic rationalism, the claims to truth of reason or of the 'natural' moral sense— a very Nietzschean Satan, in one way, who undermines the rule of God, the meaning of history and the security of one's own sense of identity. (20)

The presence of death is a major theme throughout this anthology and Baudelaire creates a sense of awe to symbolize the finality of physical and temporal life. In the collection, death is often seen as a kind of liberation from the suffering and pain of life. Baudelaire often uses images of graveyard scenes and tombs to symbolize the end of life and its inevitable passing. In some of the poems, death is viewed as a form of peace and rest, while in others it is presented as a merciful release from the harshness of living. Baudelaire often presents death as inevitable and beyond our control, but also as something that can bring a kind of beauty and mystery. He also reflects on life's brevity and how it is necessary to make the most of it while we still have the chance. Ultimately, Baudelaire portrays death as a part of life, an inescapable and frequently bitter end to our mortal journey.

In "L'Invitation au Voyage" Baudelaire conveys that death is a journey, depicting its beauty through a dream-like description of a tranquil paradise. The deeply emotive language used throughout is a reflection of Baudelaire's own ability to experience a range of powerful emotions. By creating beautiful yet damning collection of poetry, Baudelaire established a legacy that has resembled great complexity in understanding the human psyche. His radical artistic vision challenges the way readers perceive the physical, temporal, and spiritual world's and ultimately makes us confront our own beliefs. It is revered for its boldness, its daring, and its influence among French poets and philosophers. Furthermore, his anthology is regarded to this day as one of the greatest works of poetry.

Baudelaire's *Les Fleurs du Mal* is a mesmerizing garden of beauty and darkness. He captures the sorrows and sins of humanity along with the glory and joy of life in a way that feels visceral

and real. His innovative use of language, juxtaposition, and imagery opens a window straight into the human soul. His words entice and haunt us, presenting the sublime with a dark edge that lingers in our hearts long after the last page is turned. His masterful poetry offers an eternity's worth of insight in a single poem; each bloom of his pen woven together with powerful poetics. This anthology is an exquisite treatise on the human condition of sorrow and despair.

Les Fleurs du Mal is a lasting masterpiece in French literature, praised for its literary finesse and darkly beautiful mood. This collection of poems is widely considered to be an important transition between traditional forms of French romanticism and the modernist literary movement of symbolism. The poems explore themes of death, love, decadence, corruption, sin, and modern life. Baudelaire's writing in Les Fleurs du Mal is often poetic and surreal, and its psychological depth and thematic range continues to make it a timeless classic.

References

1. Benjamin, Walter. (2006). *The Writer of Modern Life: Essays on Charles Baudelaire.* Cambridge: Harvard University Press.
2. Baudelaire, Charles. (2015). *Selected Poems from Les Fleurs du Mal.* Tr. Jan Owen. London: Arc.
3. Chambers, Ross. (2015). *An Atmospherics of the City: Baudelaire and the Poetics of Noise.* New York: Fordham University Press.
4. Chao, Shun-Liang. (2010). *Rethinking the Concept of the Grotesque Crashaw, Baudelaire, Magritte.* Oxford: European Humanities Research Centre.
5. Howells, Bernard. (1996). *Baudelaire: Individualism, Dandyism and the Philosophy of History.* Oxford: European Humanities Research Centre.
6. Richardson, Joanna. (1994). *Baudelaire.* New York: St. Martin's Press.

The Poetics of Horror & Paradise in Toni Morrison's Novel

Dr Vipin Pratap Singh
Assistant Professor, Department of English
PGDAV College (Evening), University of Delhi

Abstract

This research looks on Toni Morrison's usage of several narrative voices in her novel Home. Its goal is to reveal the impact and purpose of this novel's employment of such a narrative method. The use of a variety of narrative tactics and horrific events creates a horror universe that represents the African American community's sorrow and struggle. The current study examines how racism and patriarchy shaped the growth and creation of black female identity in Toni Morrison's books The Bluest Eye and Sula. Morrison's books depict how racial and gender prejudices influence the black female's struggle for individual identity and selfhood. These works mostly use horror as a tactic for exploring the traumatic history of black life. The study's goal is to investigate the function and relevance of terror, as well as the associated narrative techniques of disruption and disconnectedness, in revealing the repercussions of social exclusion in the texts. It is based on the premise that horror offers a different perspective on African American culture. The most disheartening part of human development and civilization is that some of us are unable to embrace others as fellow humans. Human civilization is always divided by class, colour, and culture. Rather of embracing our differences and using them to our advantage, we fight to stifle and destroy others. Negroids were loathed by Caucasians, and the Mongoloids were continually at odds with Caucasians. We had lost our feeling of belonging. The chasm between wealthy and poor, between blacks and whites, and between man and woman is evident. Some unseen hand is constantly rolling the dice in the name of this class, race, and gender. Since the dawn of human civilization, human society has been basically split into classes.

Key Words: Identity, Race and Racism, Trauma and Healing, Mythology and Folklore, History, and memory

Toni Morrison's books have horror elements, making them unique works of fiction whose structure is based on a horrifying picture of African American struggle in cosmopolitan

American culture. Morrison explores the challenges of African American life in a manner that evokes fear via a variety of forms, including the supernatural, in order to convey the difficulty of the African American human experience. Horror and terror are natural human emotions that stem from a damaged identity, which is usually brought on by a traumatic event that causes one's ego to have a weird psychological breakdown. Fear is how horror presents itself as a manifestation of tension and anguish.

In order to fight the exploitative and debasing societal framework, Morrison's protagonists engage in risky behavior, which is mostly motivated by fear. The author uses horror in her writing as a powerful instrument for addressing the socio-cultural issues that are fracturing American society. Horror, in its workings, discloses a person's mental condition and fosters the ability to relate with the world around them. It encourages the writer's characters to take necessary and cautious precautions to help them overcome difficult circumstances. The diverse varieties of terror in literary works reflect the varied psychological patterns of persons. In Morrison's works, horror dramatizes the constant battle between good and evil, with one side attempting to overcome the other, resulting in chaos.

This chapter lays the groundwork for the remainder of the argument. The study's ultimate goal is to understand the nature, use, and meaning of horror in Toni Morrison's novels, so the first chapter emphasizes the fundamentals of horror in general and in American literature in particular in order to pave the way to the study's ultimate goals: the nature, use, and meaning of horror in Toni Morrison's novels. The major hinges that support the study's structure are also discussed in this chapter. A research problem, the study's objectives, a section on a review of related literature with identified sources to fill in, the theoretical structure that guides the analysis, and the methodology that specifies the relevant tools and techniques used to collect the appropriate data to be analyzed are all examples of such elements.

The Role of Horror In Art And Literature

Various literary media, such as books, films, and visual arts, have attempted to reflect people and society using intricate tactics wrapped in terrifying images that depict the issues that humanity is facing. In many cases, the narratives and aesthetic depictions of these genres convey events, incidents, and locations that depict strange happenings. Many works of cinema and contemporary literature, for example, often convey the destructive powers of human nature via a terrifying representation in which sad moments dominate the narrative thread and follow the work's end goals. Macbeth by Shakespeare and The Godfather by Mario Puzo are two exceptional examples of this particular aesthetic style. Horror emerges as a crucial

technique used by contemporary filmmakers and authors to address societal challenges that endanger human survival.

The roots of terror and its ramifications on art and literature are the key questions that arise at the start of this research. Scholars disagree on what constitutes a common meaning of the term. A common misconception is that a horror narrative, whether in art or literature, must mainly deal with fear. According to Theresa Hopper (2002), the supernatural is a valuable aspect in horror literature, but it is not a must for making a novel terrifying. The degree to which happenings provoke dread and panic in the minds of the audience, according to Hopper, is what makes a narrative terrible. Fear and terror are necessary factors in creating tension in a horror narrative; this suspense is combined with the "fear of the unknown" to accomplish the end aims of horror in art (Spadoni, 2007). Fantasy is a form of horror that "shocks or perhaps frightens the reader, or possibly generates a sensation of disgust or hatred" in literature (Cuddon, 2002: 44). It sends a message via a style that depicts exaggerated, unrealistic occurrences in which fear and irrationality rule the day.

In contemporary literature, horror fiction began with what is now known as Gothic fiction. Horror had previously dominated mythology, plastic art, classical theatre, and poetry. The Greek poet Homer's epic poems Iliad and Odyssey demonstrate this legacy. The horror element was used in mediaeval religious tales to teach Christians about the torment of sinners in hell, which were mostly centered on death and the hereafter. Horror has a difficult time establishing its beginnings because of its antiquity.

Many experts attribute the origins of contemporary horror writing to the Inquisition, a mediaeval Roman Catholic judicial system. The mediaeval papal court, the Inquisition, developed a system of norms and regulations of behavior that limited the freedom of anyone who violated the Church's canon. Witchcraft, superstition, and heresy were all condemned harshly. Witchcraft suspects and perpetrators, as well as those labeled heretics, would be burned alive. Many literary works of the time, inspired by that dreadful Catholic dogma of the time, depicted the trials of the hereafter, which were inspired by the Church's severe penalties..

The eschatological narrative poetry Divine Comedy (1308) by Dante Alighieri depicts horrifying visions of cataclysmic miseries that await sinners. The Hammer of Witches (1486), a book on the codification of the belief in witchcraft by Henry Kramer and JakobSprenger, reinforced Dante's Divine Comedy in the production of scenarios that matched panic, fear, and the strange about the atrocities of hell. This component of terror in literature became a crucial part of Renaissance play, which diverged from mediaeval subjects in order to concentrate on the socio-political challenges that were threatening human survival at the time. Writers depicted

the socio-cultural issues of the period in a horrifying manner in which the supernatural and gore ruled the stage in both theatre and poetry. Some of the works that used horror to discuss the socio-cultural issues of the British Renaissance and subsequent epochs include Christopher Marlowe's Doctor Faustus (c.1604), Thomas Kyd's The Spanish Tragedy (c.1585), William Shakespeare's Hamlet (c.1600) and Macbeth (c.1605), John Webster's The Duchess of Malfi (1613), and Edmund Spenser's The Faerie Queen (1590).

These levels of terror, particularly in Renaissance play, opened the way for contemporary horror literature, which began with the publication of Horace Walpole's The Castle of Otranto in 1764. The release of this work marked the beginning of a new period in the English novel, and it became a cornerstone of horror fiction under the Gothic literature paradigm. This work influenced a new generation of authors both within and outside of England. The beginning of the Industrial Revolution in England, as well as the advancement of science and technology in many spheres of life, which were seen as a threat to old ways of life and standards of behavior, was key sources of inspiration for the new book. These societal upheavals were a major source of inspiration for the eighteenth-century British literature. Writers began to investigate the emergence of a new social order as a result of a mechanized lifestyle, which would have an impact on social traditions and practices. The birth of the Enlightenment meant the breakdown of society for the English people. Writers used horror as a literary weapon to critique the mechanization of human life. The time produced novelists such as William Beckford (Vathek, 1786), Ann Radcliffe (The Mysteries of Udolpho, 1794), Matthew Lewis (The Monk, 1797), Mary Shelley (Frankenstein, 1818), and many more. Their works are characterized by doom and gloom, depicting society's pessimism and apprehension about the future. The novel's predominant style was horror, which revealed the society's 'fear of the unknown' future.

The book and film of the twentieth century, as well as today's, rely heavily on horror to tell important stories about the contemporary issues of human life. Horror often dominates cinema storylines because it has a stronger ability to hold the audience's attention than any other genre (Metz, 2002:21). Many horror books have been made into films as a result of their impact on audiences, in order to keep horror alive and acquire a wider audience. Novels such as Toni Morrison's Beloved (1987), Stephen King's The Gunslinger (1982), and Norman Mailer's The Executioner's Song (1979) have all been turned into films years after they were first published. Similarly, numerous Renaissance plays, such as Shakespeare's Hamlet and Macbeth, and nineteenth-century novels, such as Charles Dickens' Great Expectations (1861),

have been made into films in order to resurrect the terrifying intensity of these works in the eyes of the spectator...

Elements of Horror in Fiction

Fear and dread are the fundamental elements of horror, and they serve as the basis for a horror story. These aspects are necessary for a tale to set the tone of the text as it progresses logically. The plot usually revolves on unusual and impossible occurrences that begin in a normal manner but quickly escalate into terrifying scenarios. The situations portrayed are full of darkness, gloom, and despair. Characters must overcome horrific situations in which the strongest and, in certain cases, the most gifted with supernatural abilities prey on helpless victims. To add to the gloom of the story's mood, there is violence that usually ends in gore.

The supernatural is often used in this work to describe numerous themes, pictures, and symbols expressing changes in the human condition. Duncan (1992:67) claims that horror fiction often tries to expose people's evil natures. It is mostly dedicated to tales of terror, the strange, and "darker" supernatural powers. These forces, according to Duncan, constitute the "dark half" of human nature, which is characterized by illogical and destructive impulses. As a result of these influences, the narrative action reaches its greatest and most difficult level of comprehension within logical thought. In order to connect to the world of the book, the reader is often directed by what S.T. Coleridge (1998) refers to as "Willing suspension of disbelief." Characters' manifestations of reality are usually exposed via terrifying dreams and visions. The majority of these dreams are startling, depicting a character in a deplorable position that usually ends in disaster. Such dreams are the product of the character's suppressed grievances that have been buried in their subconscious and have now surfaced to induce fear.

In certain situations, pictures of graveyards and other dark features that expose ruin and decay are used in horror literature to convey the futility and transience of human life. The cemetery where Beloved was buried is described in the beginning of Beloved. Because the funeral is taking place in the winter, the description includes dismal imagery of cemeteries buried in snow. The narrative also depicts the setting in which the character's name, 'Beloved,' was selected, demonstrating how the name cannot be erased or forgotten since it is profoundly carved on the gravestone and firmly ingrained in her mother's mind. The same dark graveyard images recur in Sula and Song of Solomon, as Nel and Ruth Foster pay respects to the graves of her childhood friend Sula and her father Dr. Foster.

The solemn mood created by the two characters' contemplations and invocations in front

of the graves connects the subjects to their departed who rest within the graves. These devoted excursions to the graves recreate dialogue between the living and the dead, in which Nel and Ruth idealistically entertain with their deceased as if they were conversing with real humans. In Song of Solomon, there are also imagery of bones of Macon Dead, who died years ago but was left unburied to suggest the vice of human depravity and the need for punishment to chastise evil in society. In reality, Macon Dead is shown in Song of Solomon as a victim of his neighbor, a white man, who subsequently usurps his land. Macon Dead, now in a phantom form, comes to his children Macon Jr. and Pilate and advises them to revenge him by inflicting the same suffering that his killer inflicted on him.

Romance is often inserted into a story to counteract the gloom brought on by horrific events. This relationship, on the other hand, has the potential to grow into either fulfilling love or evil desire, both of which may lead to catastrophic outcomes. Typically, the evil femme fatale is punished at the conclusion of the narrative, but the terrified damsel in distress is rewarded after enduring great hardships. Milkman Dead is in love with his cousin Hagar in Morrison's Song of Solomon, but when Hagar finds that Milkman has abandoned her forever, she plots to kill him (p.107). As a consequence of a betrayed love, she becomes insane and commits herself. Paul D has a love affair with Sethe in Beloved. Sixo, an indigo slave, has an affair with Thirty-Mile Woman, who is expecting his child by the time he is burned alive. Such instances of love are overshadowed by sad occurrences that result in the lovers' deaths...

Heroes in tragedies have distinct characteristics that set them apart from other characters. However, in horror literature, main characters are often ambiguous: the protagonist is almost always discovered to have severe defects. In reality, he's more than likely to embody two opposing natures of good and evil, one opposing the other. Milkman Dead's priority in the beginning of Song of Solomon, for example, is riches, which he thinks will elevate his social status beyond that of his father. He is a peaceful young man who does not create any problems in the household. Despite this, he is seen robbing his Aunt Pilate in the midst of the story. Milkman is also responsible for the murder of his cousin Hagar, who commits suicide as a result of his love treachery. However, the same protagonist is taken aback when he finds that Hagar has died after a few days. By the time Pilate is killed by Guitar Bains, Milkman is heartbroken. Ironically, it was Pilate's home that was broken into by Milkman in order to steal the purported wealth she would hold.

Female characters are put in difficult circumstances that make them despondent and powerless. In certain circumstances, a male oppressor, such as a ruler or a king, torments the female character by forcing her to submit to his egocentric desires. If the protagonist is

a woman, she is frequently left alone. In The Bluest Eye, for example, Pecola is abused twice and pregnant by her own father, Cholly Breedlove. She is eventually consigned to a life on the streets, where she fails terribly.

Isolation, both physical and psychological, is a common theme in horror stories. In Beloved, Sethe and her daughter Denver, Pecola and her mother Pauline in The Bluest Eye, and Nel and Shadrack in Sula, they are ensnared and separated from the rest of the society. Denver is despised in her neighborhood and at school as a result of a crime committed by her mother, and Pecola is socially isolated as a result of her hideously incestuous situation. The major protagonists in the writer's stories are usually struck by this solitude, which causes them to become bewildered and detached from themselves and their surroundings.

The overall emphasis of this research is on Toni Morrison's portrayals of terror in her books. It looks at terror in five of the author's books (Beloved, Song of Solomon, Sula, The Bluest Eye, and Love), focusing on the creative and narrative consequences it has on the world of the texts. Morrison uses horror as a medium to address the obstacles that African Americans face, first as a subaltern in a white dominant society, and then as a woman in a patriarchal social framework. The primary focus of this research is on the mechanics of usage and the impact that terror has on texts...

The American horror novel

By the turn of the nineteenth century, American horror fiction had emerged. Charles Brockden Brown, Edgar Allan Poe, and Nathaniel Hawthorne are credited with establishing this genre by departing from European norms, which mostly took settings from the mediaeval countryside (Sutherland, 2004). The earliest horror books created in American literature were Brown's Wieland; or the Transformation: An American Tale and Edgar Huntly, both published in 1798 and 1799.

Poe's triumphs in American literature, on the other hand, established a considerable acknowledgement of terror in the portrayal of American difficulties of life. In that way, his iconic short tale "The Fall of the House of Usher" attests to the function of terror in literature. He is considered a pioneer of the Southern Gothic by Wright (1945) and Hamilton (1979), which uses horror as a basic instrument to exhume the buried facts of the American past. By using a first person narration that is inclusive rather than exclusive, Poe's horror narrative style blends both a subjective and objective picture of an individual's or society's plight. William Faulkner revitalized and popularized the horror fiction in the 1920s, particularly in his masterpiece As

I Lay Dying (1930). The Great Migration at the turn of the century, the Great Depression from 1929 onwards, the two World Wars, and the violent Civil Rights struggle from the 1950s onwards all contributed to the imagination and expression of dread and fear that dominate this literature.

The challenges that American culture is dealt with are heavily emphasized in the American horror book. The unusual behavior of individuals and the socioeconomic disparities that threaten contemporary America are regularly explored by writers. They underscore the fragility of societal order in their works. Poverty, rape, racism, estrangement, juvenile delinquency, failed marriages, sexism and gender, religious skepticism, and crime and violence are all common themes. These themes may be found in the works of authors such as William Faulkner, Stephen King, Toni Morrison, and others. Due to its historical background with relation to slavery and racism in America, much of this literature is set in the South. Plantations are often used as settings, like in the case of Beloved, which depicts the horrific circumstances suffered by slaves on the Sweet Home Plantations in Kentucky. Old towns or run-down downtowns may also be used as settings. In these works, the North-South divide resonates, echoing the socio-cultural divide that divides the two domains.

In the American novel, insanity is a common theme. Characters are often shown as deranged, carrying out deeds that ruin both their counterparts' and their own lives. Shadrack and Plum's craziness endangers their own lives as well as the community's. Plum's mental and physical incompetence preoccupies Eva, who decides to immolate him in order to briefly alleviate her emotional sorrow, which has been exacerbated by a socio-economic catastrophe. Madness is also shown in Song of Solomon and The Bluest Eye, where Hagar loses her senses and eventually dies, while Cholly Breedlove becomes wild to the point of setting fire to the family home. Writers use fictional characters to depict the damage that humans may cause to one another and the ramifications that this has on the social order. Some individuals are depicted as naïve, yet the struggle to find a place in society is constantly present. Characters are often seen attempting to make sense of the world around them, whether mad or not..

Horror in Morrison's fiction

Some Morrison critics agree that the writer's fiction is based on a two-fold art: entertainment and enlightenment literature. Both styles place a strong emphasis on the African American community's experiences in a mostly white society. Morrison often uses horror in his enlightenment fiction in order to bring to light present concerns that plague American culture. Most importantly, horror becomes a necessary instrument for exposing the horrors of

racial discrimination, gender inequality, and economic divisions in America. Beloved, Song of Solomon, and Sula all discuss these concerns in depth, demonstrating how they alienate both the oppressor and the victim. Morrison imagines supernaturalism, in which ghosts and superstition create a gloomy atmosphere of fright and fear, among other things, to generate horror in her writings. The traumatic return of Beloved to her family in Beloved and the sight of a ghost of a white bull in Song of Solomon that causes Freddie's mother's death while giving birth are two supernatural happenings that create a terrifying impression in the reader's imagination. Other episodes of terror in Morrison's writing include scenes of insanity, incest, and sexual harassment, as well as extreme brutality, inexplicable fires, and terrifying nightmares. Shadrack, for example, is depressed as a result of the aftermath of World War One in Sula. He organizes a "National Suicide Day," in which individuals are encouraged to murder one another or themselves. In several of these situations, the author uses terror to depict the estrangement that black people face from both inside and beyond the white community...

Conclusion

To be conclude, it can be said that Toni Morrison's navels are a testament to her immense talent and profound understanding of the human situation. Through her novels, she delves into themes of identity, race, history, trauma, and the complexities of human relationships. Morrison's works are characterized by their powerful storytelling, vivid characters, and meticulous attention to language and symbolism. One of the key strengths of Morrison's writing is her ability to tackle challenging subjects with grace and honesty. She daringly explores the lasting impact of slavery, racism, and oppression on individuals and communities, casting light on the psychological and emotional toll they are precise. Her chronicles often confront the painful truths of history, encouraging booklovers to tackle the past and examine the present through a critical lens. Morrison's writings also rejoice the resilience, strength, and agency of relegated voices. Her characters, often African Americans, navigate the intricacies of their identities and struggle for self-definition in a world that seeks to diminish their worth. She creates rich and multidimensional characters who grapple with their pasts, confront personal wizards, and ultimately find paths towards healing and emancipation.

Furthermore, Morrison's prose is Known for its expressive beauty and haunting imagery. She interlaces together components of folklore, mythology, and spirituality, infusing her stories with a sense of magic and symbolism. Her language is both poetic and accessible, engaging readers on multiple levels and fascinating them to engage themselves in her storylines.

In summary, Toni Morrison's writings are a testament to her virtuosity as a teller and her solid obligation to focusing the densities of the human understanding. Her works have made an abiding impression, needling consideration, enflaming discussions, and instigating bookworms to encounter the scratchy honesties of past and strive for a more just and compassionate planet.

References

1. Toni Morrison Remembers. BBC. Summer 2015. Retrieved January 24, 2021.
2. Hampton, Rachelle (November 22, 2019), "'She Found Us in the Deserts of Ourselves'", *Slate.*
3. Di Corpo, Ryan (November 26, 2019), "Author Toni Morrison Honored at Public Memorial", *America.*
4. *"Toni Morrison Fast Facts". CNN. August 8, 2019. Retrieved August 8,2019.*
5. *Hoby, Hermione (April 25, 2015). "Toni Morrison: 'I'm writing for black people ... I don't have to apologize'". The Guardian. Retrieved April 29, 2017.*

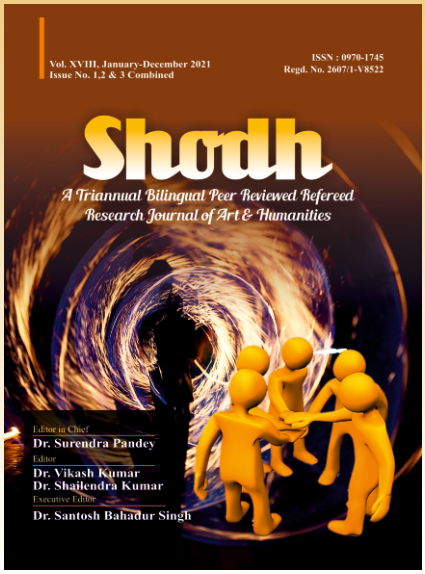

Published by

History & Historical Writing Association,
U.P., Varanasi (INDIA)
HIG-4, VDA Colony, Lalpur-II, Chandmari,
Varanasi, Email: shodh1984@gmail.com